आध्यात्मिक प्रेम गीताञ्जली

(गद्य-पद्यमय)

-आचार्य कनकनन्दी

"अहमेकः खलु शुद्धश्च निर्ममतः ज्ञानदर्शन समग्रः" (समयसार)
(मैं निश्चय से एक हूँ, शुद्ध हूँ, निर्ममत्व हूँ, ज्ञानदर्शन से पूर्ण हूँ)

: पुण्य-स्मरण :

एक परिवार द्वारा निस्पृह-निराडम्बर चातुर्मास
(चितरी 2017) के उपलक्ष्य में

स्वैच्छिक अर्थ सौजन्य (ज्ञानदानी)

1. श्रीमद् राजचन्द्र आध्यात्मिक साधना केन्द्र, कोबा (गाँधीनगर), अहमदाबाद (गुजरात) के साधकों द्वारा
2. श्रीमती सुशीला बहीन ब्रह्मचारिणी संध्या दीदी, चितरी
3. श्रीमती हँसा बहीन, मधोक-शीतल, श्रेय, सांशी जैन, चितरी

ग्रंथांक-285 प्रतियाँ-500
संस्करण-प्रथम 2018 मूल्य-51/- रु.

प्राप्ति स्थान एवं सम्पर्क सूत्र

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त
(1) धर्म-दर्शन सेवा संस्थान
द्वारा-श्री छोटूलाल जी चित्तौड़ा
चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,
उदयपुर (राज.)-313001/मो. 097832-16418
(2) डॉ. नारायणलाल कछारा
सचिव-धर्म-दर्शन सेवा संस्थान
55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313001
फोन नं. 0294-2491422/मो. 092144-60622
E-mail:nlkachhara@yahoo.com

निस्पृही गुरु कनकनंदी जी

सृजनकार-अक्षय शौर्य शाह

(चाल : पापा मेरे पापा....., ऐ मेरे वतन के लोगों.....)

हम तो है महादंभी...कनक गुरु हो निस्पृही।
हमारा उद्धार कौन करेगा...कनकनंदी गुरुवर।। हम तो...(ध्रुव)

हमेशा सबको पढ़ाते (हो)...सतत आगम पाठ पढ़ाते...
स्व (आत्म) का बोध कराते...सत्य यथार्थ बोध कराते। कनकनंदी...(1)

सतत पुरुषार्थ है करते...मनन-चिंतन करते हो...
स्व में ही लीन रहते...प्रयोग परीक्षण करते। कनकनंदी...(2)

अवगुण को इगनोर करते...सद्गुण को एक्सेप्ट करते...
(मैं) अक्षय शौर्य आपके सम बने...ऐसा आशीष उसे दो। कनकनंदी...(3)

चितरी, दिनांक 20.08.2017, प्रातः 9.45

आचार्यश्री के अलौकिक व्यक्तित्व के प्रति मेरी भावनाएँ

-ब्र. अलका जैन (कोबा आश्रम)

(चाल : आ लौट के आजा मेरे मीत.....)

हे कनकनंदी! गुरुराज चरण तेरे चित्त को सुहाते है,
करूँ सेवा तेरी दिन-रात वचन तेरे भव से तिराते है। ध्रुव.

सन्मार्ग दाता सुख का प्रदाता, तुझ सम नहीं कोई दूजा,
पाके परस तेरी करके दरस तेरा, चरणों की तेरी पूजा,
सोया आतम जगा दो गुरुराज, अरज तेरे दर पे सुनाते हैं। करूँ सेवा...

शिव के पथिकजन पाते है छाया, ऐसा सघन-सा तरूवर,
मिट जाते जग के संताप सारे, सुंदर-सा शीतल सरोवर,
पाके सूरज-सा दिव्य प्रकाश, जगत्जन तमस नशाते हैं। करूँ सेवा...

रत्नत्रयभूषित संयम सुशोभित, ज्ञानी-विज्ञानी-ऋषिवर,
स्वाध्याय तपस्वी निश्छल मनस्वी निःस्पृह निरागी गुरुवर,
हे आध्यात्म योगीराज! तुझे हम शीश झुकाते हैं। करूँ सेवा...

गुरु बिना आध्यात्मिक ज्ञान नहीं होता, अतः मैं आचार्यश्री के पास आकर अध्ययन करना चाहता हूँ!

-अखिल भारतीय क्षत्रिय युवक संघ प्रमुख श्री भगवान् सिंह

आध्यात्मिक ज्ञान से भी भारत विश्वगुरु रहा किन्तु वर्तमान में भारतीय इससे विपरीत हैं

-आचार्य कनकनंदी

वाग्वर अञ्चल के सांस्कृतिक ग्राम चितरी में चातुर्मास व प्रवासरत आध्यात्मिक वैज्ञानिक संत प्रवर आचार्यश्री कनकनंदी जी गुरुदेव ससंघ के दर्शनार्थे क्षत्रिय युवक संघ प्रमुख श्री भगवान सिंहजी व क्षत्रिय समाज के अनेकों पदाधिकारी व श्रद्धालु जिज्ञासु महानुभाव विभिन्न अञ्चलों से पधारे। चर्चा-वार्ता-साहित्य व ज्ञान के आदान-प्रदान-समन्वय व सामाजिक समरसता आदि आयामों से महती प्रभावना व उपलब्धि हुई।

भगवान् सिंहजी व सहयोगीजनों ने आचार्यश्री का गुणानुवाद व अर्घ्य चढ़ाकर विनय बहुमान किया, जिसे देखकर उपस्थित श्रोता भक्त-शिष्यजन अत्यंत आह्लादित हुए। भगवान् सिंहजी ने गुरुदेव के श्रेष्ठतम भाव-व्यवहार-लक्ष्य-ज्ञान व आध्यात्मिक अनुभवों से युक्त उदार व्यापक वैश्विक दृष्टिकोण से प्रभावित होकर कहा कि आप जैसे निस्पृही समताधारी गुरु बिना आध्यात्मिक ज्ञान नहीं होता, अतः मैं आपके सान्निध्य में आकर अध्ययन-ज्ञानार्जन करना चाहता हूँ। आध्यात्मिक उद्बोधन देते हुए कहा कि गुरु-शिष्य को गुरु बनाकर ही छोड़ता है। इस अवसर पर आचार्यश्री सृजित तीन कविताओं के रसास्वादन से श्रोतागण हर्षित व भावविभोर हुए।

आचार्यश्री ने अपने आध्यात्मिक प्रबोधन में समस्त भारतीय दर्शनों का उल्लेख करते हुए कहा कि आध्यात्मिक ज्ञान से भी भारत विश्वगुरु रहा किन्तु वर्तमान में भारतीयजन इससे विपरीत हैं। गुरुदेव ने गीता-समयसार-प्रवचनसार आदि ग्रंथों का सारभूत रहस्य उद्घाटित करते हुए बताया कि प्रत्येक आत्मा में अनंत शक्ति विद्यमान है अतः आप सब भगवत् स्वरूप हैं। गुरुदेव ने कहा कि आज का दिन संस्कृति व उदारता विनम्रता समन्वय संगठन के पवित्र मिलन का महाकुंभ है। गुरुदेव ने क्षत्रिय

शब्द की व्यापक व्याख्या करते हुए बताया कि जो स्व-पर-विश्व को क्षत से रक्षा करे वह क्षत्रिय है। भगवान् सिंहजी ने कहा कि जो गुणों से गुरु अर्थात् भारी अथवा जो आध्यात्मिक गुणों से आकर्षित करे वह गुरु है। इस अवसर पर आचार्यश्री ने अभ्यागतों को स्व-सृजित साहित्य आदि प्रदान कर शुभाशीष दिया। क्षत्रियजनों की उदारता, गुणग्रहिता व समन्वय भाव से जन-गण-मन व चतुर्विध संघ अत्यंत आह्लादित हुए।

प्रस्तुति-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

स्व आत्म-निंदा-गर्हा-आलोचना-प्रायश्चित्त-प्रतिक्रमण

-मुनि अध्यात्मनंदी

(ग्राम-चितरी, दिनांक 06.11.2017)

मैं मुनि आध्यात्मनंदी स्व-आध्यात्मिक गुरु परम पूज्य समताधारी निस्पृह संत वैज्ञानिक श्रमणाचार श्री कनकनंदी जी गुरुदेव व ससंघ समक्ष अपनी निंदा-गर्हा-आलोचना-प्रायश्चित्त-प्रतिक्रमण करता हूँ। मैं अल्प-मंद विपरीत बुद्धि अज्ञानी जीव हूँ। मैंने अनंत भवों में अनंतानंत कुकर्म करके पापाश्रव किया है एवं वर्तमान मनुष्य पर्याय में भी देव-शास्त्र-गुरु का अविनय कर घोर पाप अर्जन किया है। अनंतानंतानुबंधी क्रोध-मान-माया-लोभ-राग-द्वेष-मोह-मिथ्यात्व के कारण मैंने बहुत दोष किये हैं। रूढ़ि-परंपरा, रीति-रिवाज, पंथ-मत, ऐच्छिक हिन्दी मैं पढ़ा हूँ और मुझे अन्य से भी अच्छी हिन्दी आती है आदि का थोथा अहंकार, मैं सब जानता हूँ, मैं जो जानता हूँ वह सही जानता हूँ इसी प्रकार की अनेक भ्रांत धारणाओं को पालकर स्व-गुरु के सत्य वचन, भाषा, भाव-व्यवहार में दोष लगाया है तथा उसे गलत सिद्धकर मैंने घोर पाप किया है। गुरुदेव प्रति विनय, बहुमान आदर-भाव आदि में मेरी कमी रही है। गुरुदेव ने मेरे सुधार के लिए अनेकों बार प्रेमपूर्वक समझाने का प्रयास किया परन्तु मैं मतिमंद गुरुदेव के भाव व कथन को नहीं समझ पाया तथा गंभीरता से विचार कर संभलने-सुधरने का प्रयास ही नहीं किया। मेरी दीक्षा के 11 वर्ष व्यतीत होने के पश्चात् व आपके समीप रहकर भी मैं कुछ नहीं सीख पाया। मेरा आत्म विकास नहीं हुआ यह मेरा महा दुर्भाग्य है।

मैं असंख्य अवगुणों का पिंड हूँ। यह सब आप गुरुदेव जानते हुए भी, मेरी

धृष्टता, दुर्व्यवहार करने पर भी कभी भी अक्षमा का भाव नहीं रखा तथा मेरे सुधार हेतु संबोधन देते रहे व समझाते रहे लेकिन मुझ दंभी पर इसका कुछ प्रभाव नहीं हुआ। मुझे मेरी अज्ञानता का कई वर्षों के बाद ज्ञान-भान-अनुभव हुआ है इसे मैं अपनी बहुत उपलब्धि एवं पुण्योदय मानता हूँ, अनुभव करता हूँ, हृदय से स्वीकार करके स्वयं को सुधारने का निर्णय और गुरुदेव से इस मोक्ष पथ पर आगे बढ़ने हेतु आशीर्वाद चाहता हूँ। गुरुदेव आप तो करुणा निधान हो मैं दोषी आपको कोटि-कोटि बार त्रय भक्तिपूर्वक नमोस्तु करता हुआ क्षमा-याचना करता हूँ व मुझे प्रायश्चित्त देकर शुद्ध कीजिये। गुरुदेव आप महान् संत है। आपको समझने हेतु मुझे अनेक भव लेने होंगे। आप सद्गुरु सान्निध्य में मेरा यह शेष जीवन समाधिपूर्वक होवे और जब तक मोक्ष लक्ष्मी प्राप्त न हो तब तक आपका सान्निध्य, संबोधन प्रेरणा आशीर्वाद सदैव मिलता रहे। गुरुदेव श्रीचरणों में कोटि-कोटि नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु।

गुरुअर्ची-मुनि आध्यात्मनंदी

हिन्दी भाषा को शुद्ध व व्यापक बनाने हेतु मेरा आह्वान

-आचार्य कनकनंदी

(चाल : दुनिया में रहना है तो....., क्या मिलिये ऐसे लोगों से....., भातुकली.....)

हे ! हिन्दी भाषी सुनो मेरे वचन, हिन्दी को बनाओ शुद्ध मानकपूर्ण।
व्याकरण युक्त तत्सम, तद्भव शब्द, प्रयोग करो है। व्युत्पत्ति युक्त।।

अन्यथा न होगा सही आगम ज्ञान, जो हिन्दी में भी अनुदित आगम।
अन्य ज्ञान-विज्ञान का भी न होगा ज्ञान, आयुर्वेद से लेकर सामान्य ज्ञान।। (1)

इस हेतु करो व्याकरण का ज्ञान, संस्कृत-प्राकृत का भी करो ज्ञान।
भारत की अन्य भाषाओं का करो ज्ञान, जिससे हिन्दी भाषा में बनोगे विद्वान्।।

प्रचलित में जो भाषा करते प्रयोग, केवल बोली है नहीं है शुद्ध प्रयोग।
विश्वविद्यालय तक नहीं मानक हिन्दी, देशी-विदेशी शब्द युक्त सामान्य हिन्दी।। (2)

जो भी पढ़ते उसे प्रायः न करते प्रयोग, रूढ़ि-परंपरा का ही करते प्रयोग।
उच्चारण से लेकर लिंग-समास, लेखन में भी प्रायः गलत प्रयोग।।

अनुस्वार-विसर्ग व मात्रा-विभक्ति, संयुक्ताक्षर से लेकर हलंत विधि।
लिखने व बोलने में करते गलती, किन्तु न समझ पाते हो स्व-गलती।। (3)

शुद्ध को अशुद्ध मानते हो अज्ञ, शुद्ध भाषा हेतु भी न करते (हो) प्रयत्न।
अधिक और भी अभी हो रही दुर्दशा, गुलामी अंग्रेजियत अभी की शिक्षा।।

अंक से लेकर वार व महीना के नाम, भोजन सामग्री से ले गृह सामान।
शरीर के अंग से पशु-पक्षी के नाम, हिन्दी में न जानते कैसे हो सुज्ञान।। (4)

भाषा ज्ञान से करो हे ! आत्मिक ज्ञान, जिससे ज्ञान होगा सम्यक्ज्ञान।
ज्ञान से युक्त करो सही आचरण, इस हेतु 'कनक' गुरु करे आह्वान।। (5)

चितरी, दिनांक 18.11.2017, रात्रि 11.20

आचार्यश्री कनकनंदी जी गुरुदेव श्रीसंघ की सरलता/निस्पृहता/निराडम्बरता/उदारता

सृजेता-ब्र. रोहित भैया

(चाल : गंगा तेरा पानी.....)

'कनक' गुरु तव पावन जीवन, हम सबको हर्षाए।
'कनक' गुरु की महान् तपस्या, निस्पृहता दिखलाए।। (ध्रुव)

सरलता है श्रीसंघ में आपके, जन-मन प्रभावित करे।
आचार्य-मुनि-आर्यिका-सुपात्र, तुझसे ज्ञान पाए।
वैज्ञानिक-चैंसलर-प्रोफेसर भी, तुझसे 'मैं' (आत्मा) को जाने।। (1)

आपकी भाषा है प्रकृष्ट, सभी को लगे दुर्बोध।
कविता-साहित्य/(लेख)-ग्रंथों में, भाषा है दुरूह।
आगम को समझने हेतु, भाषा है अपरिहार्य।। (2)

शहर से ग्राम, ग्राम से कांतार, में बढ़ाए पद।
संसारिक लोगों की संकीर्णता से, तोड़ा जनसंपर्क।
एकांत-मौन साधना में रत है, आध्यात्मिक संत।। (3)

ढोंग-पाखण्ड-आडम्बर रहित है, आपका श्रीसंघ।
सहजता-वात्सल्य भाव करता, अन्य को प्रभावित।
आपके आशीर्वाद से ही करता है आत्म-चिंतन।। (4)

सर्व विषयों के ज्ञाता गुरु है दंभ से पूर्णतः रहित।
'रोहित' भी आप सम बन जाए, ऐसा दो आशीष।
इतनी उदारता कही न देखी, दिखती है जो यहाँ पर।। (5)

चितरी, दिनांक 10.11.2017, रात्रि 11.35

कनक गुरु का 'मैं'/(अहं) आत्मज्ञान

सृजेता-बालकवि-अक्षय शौर्य शाह

(चाल : महावीर-महावीर....., भगवन तो सदा....., हे राम!.....)

किसी के पास ज्ञान नहीं है 'कनक' गुरु के पास ज्ञान है।
श्रेष्ठ आत्मा कनक गुरु (है), कोई नहीं है प्रकृष्ट आत्मा।। (1)

कनकऽऽऽ कनकऽऽऽ

कोई (फिर भी) आपको नहीं समझ सकता, क्योंकि किसी के पास ज्ञान नहीं।

कनकऽऽऽ कनकऽऽऽ

स्व (आत्मा) के विषय में जब वे कहते, अन्य समझते की वे दंभी है।

कनकऽऽऽ कनकऽऽऽ

आज भी उनको पीड़ा है (कि), लोग (उनको) समझते थे अहंकारी।

कनकऽऽऽ कनकऽऽऽ

ज्ञान का जब मद होता, जब वो गुरु के निकट आते तब उनका दर्प दूर होए।

कनकऽऽऽ कनकऽऽऽ

चितरी, दिनांक 20.08.2017, रात्रि 10.30

आचार्य कनकनंदी गुरुदेव से विनती

बालकवि-अक्षय शौर्य शाह, कक्षा-6

(चाल : सुनोना संगमरमर.....)

सुनोना प्यारे गुरुवर...हमारी अज्ञानताएँ...कुछ भी नहीं है आपके आगे...
आप हो महानतम...आपका श्रेष्ठ स्वभाव। सुनोना...
बिन आपके गुरुवर...बढ़ रहा था अज्ञान...
जब से मिले आप हमें...कम हो रहा अज्ञान/(अहंकार)...
कमियाँ भी ज्ञात हुयी...
सुनोना 'कनक' गुरु, दूर करो अज्ञानताएँ...। कुछ भी...सुनोना...

चितरी, दिनांक 20.08.2017, प्रातः 10.20

(मेरा अनुभव) ''स्व हिन्दी भाषा की कमी से आचार्य कनकनंदी की श्रेष्ठ हिन्दी अन्य लोग सही नहीं समझ पाते व गलत मानते''

-आर्यिका सुवत्सलमती

(चाल : ऐ मेरे वतन के लोगों.....)

भाषा, ज्ञान साधन का, सशक्त माध्यम है।
अभिव्यक्ति हेतु भाषा महत्वपूर्ण साधन है।। (ध्रुव)

विद्यार्थी जीवन में मुझको, इसका बोध नहीं था।
इस हेतु ही तो मैंने, भाषा को महत्व न दिया।।

कनक गुरु की निश्रा में अब, हिन्दी का महत्व समझा।
स्व की अज्ञानता व अहंकार का ध्वंस (नाश) हुआ है।। (1)

गणितीय/आयुर्वेद-दर्शन-न्याय विधि व तार्किक (तर्कशास्त्र)।
आगम व परमागम आध्यात्मिक सैद्धांतिक।।

साहित्य की भी भाषा होती (इसका) बोध हुआ गुरु से।
बहुविध भाषा विद्, हैं कनकनंदी गुरुवर।। (2)

आचार्य व साधु संघ के गुरुदेव हैं उपाध्याय।
देशी-विदेशी वैज्ञानिक, शिक्षाविदों के हैं पाठक/(शिक्षक)।।

बहुविध विद्या का अध्ययन, स्वयं करते व अध्यापन कराते।
उच्चतम अध्यापन हेतु, उच्चतम ही भाषा आवश्यक।। (3)

सामान्य बोली भाषा में नहीं हो सकता है लेखन।
श्रेष्ठतम विषय प्रतिपादन, होगा तत्सम-तद्भव भाषा में।।

आचार्य/(शिष्य) व प्रबुद्धजन, सनम्र अनुरोध करे।
भाषा का सरलीकरण करें, अनुग्रह हो हम शिष्यों पर।। (4)

ज्ञानदान की शुभभावना से, करुणा निधान गुरुवर।
शिष्यों को प्रज्ञावान् समझ देते रहे उच्चतम ज्ञान।।

परिश्रम तो बहुत क्रिया, पर लाभान्वित कम हुए।
सामान्य शिष्यगण, ज्ञान से वंचित रहे।। (5)

दो हजार पंद्रह से, अध्यापन पद्धति बदली।
पहले प्रश्नोत्तर द्वारा, पात्र की परीक्षा लेते।।

पात्रता के अनुरूप ही, ज्ञान का दान हैं करते।
अल्प परिश्रम से भी, जिज्ञासु/(शिष्य) लाभान्वित होते।। (6)

गुरुदेव की श्रेष्ठ भाषा को, गलत समझने का दुस्साहस किया।
सुधारने का भी प्रयत्न करके, अनावश्यक पाप बांधा।।

पर दुःख-कातर गुरुवर, अतः पाप से रक्षा की है।
अज्ञानता व अहंकार का, दर्पण हमें दिखाया।। (7)

गुरुदेव के ज्ञान व भावों को, श्रद्धा से ही समझे।
पावन/(उनके) भावों को समझकर, अपना जीवन सुधारे।।

ज्ञान-विज्ञान को समझना, कई वर्षों/(भवों) में संभव होगा।
श्रद्धा से उनके अनुरूप, आचरण करना होगा।। (8)

चितरी, दिनांक 17.11.2017, रात्रि प्रायः 9.30

महान् भाषाविद् आचार्यश्री कनकनंदी गुरुवर की परिष्कृत भाषा अन्य जन क्यों नहीं समझ पाते?!

-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(चाल : आत्मशक्ति....., सायोनारा.....)

कनक गुरु की शुद्ध/(उच्च) भाषा...सारे जग से है न्यारी...
तत्सम मौलिक शब्द युक्त...व्याकरणबद्ध प्रणाली...
दार्शनिक वैज्ञानिक गणितीय...आगम-परमागम वाली...
आध्यात्मिक बोध युक्त...विविध विधा समन्वयकारी...(1)...

कनक गुरु की चर्चा-वार्ता...अध्ययन-अध्यापन शैली...
उच्च से उच्चतर होकर...उच्चतम होती जाती...
सत्य-तथ्य शोध/(बोध) परक...बहुविधाओं की सहचारी...
स्याद्वाद-नय-प्रमाण सहित...अनेकांत दर्शन वाली...(2)...

प्राचीन विद्या श्रेष्ठ ज्ञान सह...आधुनिक सर्व विधा वाली...
स्व-मत पर-मत समन्वय युत...तात्कालिक ज्ञानी-विज्ञानी...
भारतीय/(जैन) तथ्य जो आधुनिक...विज्ञान से भी हैं परे...
आप समस्त विद्या विशारद...स्वानुभव ज्ञान से पूरे...(3)...

सामान्य जनों की भाषा होती...रूढ़िवादी बाजारू फिल्मी...
महान् भाव-व्यवहार-लक्ष्य...रहित कामचलाऊ क्षुद्र वाली...
अतः ऐसे क्षुद्रभावी जन...समझ न पाते गुरु की भाषा...
व्यापक सूक्ष्म व मौलिक...विषयों की क्लिष्ट भाषा...(4)...

अपूर्व अर्थ प्रतिपादक...शोधपूर्ण श्रेष्ठ भाषा...
आदर्श स्वरूप प्रायोगिक...ब्रह्माण्डीय व्यापक बोध भाषा...
देश-विदेश के शिक्षार्थीजन...इसका प्रयोग कर बन रहे ज्ञानी...
'सुविज्ञ' जन सत्य/(तथ्य) बोध से...बने ज्ञानी-विज्ञानी-पुरोगामी...(5)...

चितरी, दिनांक 15/16.11.2017, रात्रि व मध्याह्न 2.05

आचार्य कनकनंदी बहुगुणधारी

सृजेता-बालकवि अक्षय शौर्य शाह

(चाल : तुम मेरे हो इस पल.....)

गणधर के साक्षात् रूप हो...कवियों के महाकवि हो...
शिक्षा आप अर्जन करते हो...अन्यों को भी ज्ञानदान करते हो...
इस ब्रह्माण्ड में आप जैसा कोई नहीं...कोई भी ऐसा होगा नहीं...
गुरुदेव आप बहुगुणधारी हो...(1)...

वैज्ञानिक आचार्य कहलाते...वैज्ञानिकों को पढ़ाते हो...
विमल-कुंथु के नंदन हो...आचार्यों के महाआचार्य हो...
आपका बहुत उपकार है...जो हम जैसे को पढ़ाते हो...गुरुदेव...

चितरी, दिनांक 20.08.2017, प्रातः 10.15

मेरी योग्य सरल भाषा (बोली) बिन ज्ञानदान की मेरी समस्या

(तीर्थंकर से लेकर साधु-साध्वी भाषा द्वारा करते ज्ञानदान)

-आचार्य कनकनंदी

(चाल : आत्मशक्ति.....)

तीर्थंकर से ले हितोपदेशी तक करते हैं परोपकार।
ज्ञानदान रूपी हितोपदेश से करते है महोपकार।।

सात सौ अठारह भाषा से तीर्थंकर करते है ज्ञानदान।
गणधर से लेकर हितोपदेशी तक यथायोग्य करते ज्ञानदान।। (1)

सात सौ क्षुद्र (भाषा) व अठारह महाभाषा द्वारा वे (तीर्थंकर) करते ज्ञानदान।
देव-मनुष्य-तिर्यंच योग्य संपूर्ण भाषा द्वारा वे (तीर्थंकर) करते ज्ञानदान।।

गणधर से लेकर हितोपदेशी तक मौखिक-लिखित से करते ज्ञानदान।
अपरिग्रही होने के कारण तीर्थंकर से ले साधु हेतु भाषा ही साधन।। (2)

आचरण से भी हितोपदेश करते हैं वे सभी महानुभाव।
किन्तु सूक्ष्म-व्यापक उपदेश हेतु चाहिए उपयुक्त भाषा ज्ञान।।

तीर्थंकर होते अनंतज्ञानी बोल सकते हैं हर भाषा में।
किन्तु मुझमें नहीं इतनी योग्यता कि बोल सकूँ हर भाषा में।। (3)
मुझे प्रायः प्रचलित रूढ़ि बोली/भाषा नहीं आती विशेष रूप से।
संस्कृत निष्ठ भाषा (मैं) प्रयोग करता हूँ प्रायः चौदह भाषा में।।
धर्म दर्शन व विज्ञान गणित आयुर्वेद तर्क न्याय के शब्द।
प्रायः मैं सहजता से प्रयोग करता हूँ जो होते श्रेष्ठतम शब्द।। (4)
संधि-समास युक्त प्रत्यय उपसर्ग युक्त प्रयोग करता हूँ आगमोक्त शब्द।
अनावश्यक विस्तार न करता हूँ, नहीं बोलता हूँ पिष्ट पोषण शब्द।।
कथा किम्बदंती चुटुकला आदि का नहीं करता हूँ विशेष प्रयोग।
सूक्ष्म-व्यापक व आगम वैज्ञानिक-आध्यात्मिक का करूँ कथन।। (5)
अप्रचलित व महत्वपूर्ण विषयों का करता हूँ कथन-लेखन।
जिसे अधिकतर लोग नहीं समझ पाते आचार्य से ले वैज्ञानिक।।
आचार्य से वैज्ञानिक तक मुझे अनुरोध कर रहे है अनेक वर्षों से।
सरल भाषा करने हेतु किन्तु सरल न हो रहा है मुझसे।। (6)
इसके कारण भी मेरी ज्ञानदान की भावना न हो रही है पूर्ण सफल।
इसलिए हिन्दी व्याकरण का ज्ञान दे रहा हूँ सम्प्रति काल।।
मेरी भावना है श्रेष्ठ ज्ञान हेतु श्रेष्ठ भाषा का भी हो परिज्ञान।
इस हेतु भी 'कनकनंदी' बाल्यकाल से ही कर रहे हैं प्रयत्न।। (7)

चितरी, दिनांक 13.11.2017, रात्रि 11.05

(मेरे अनुभव) स्व-अज्ञान व दोष परिज्ञान से विकास

(मेरे उत्तम गुणों को गलत मानने वालों के भाव परिवर्तन से बनते परम भक्त-शिष्य-दाता)

-आचार्य कनकनंदी

(चाल : आत्मशक्ति....., सायोनारा.....)

स्व-अज्ञान के परिज्ञान से होता ज्ञान विकास,

स्व-दोष के परिज्ञान से होता गुण विकास।

प्रकाश से यथा तम नशता ताप से नशे शीत,
तथाहि ज्ञानी व गुणी बनने हेतु स्व को करो संशोधित।। (1)

हित प्राप्ति व अहित परिहार होना ही सुज्ञान,
अन्यथा वह नहीं होता सुज्ञान होता है वह कुज्ञान।

स्व-पर प्रकाशी होता है दीपक तथाहि होता सुज्ञान,
अन्यथा वह होता है कुज्ञान मदमस्त सम ज्ञान।। (2)

मेरे कुछ अनुभवों को कर रहा हूँ मैं वर्णन,
स्व-पर हित कर रहा हूँ मैं यहाँ वर्णन।

अन्यत्र भी शिक्षा लेने हेतु किया हूँ अधिक वर्णन,
बिन जानने ते दोष गुणनों को कैसे त्यजिए-गहिए।। (3)

अनेक लोग मेरी नहीं समझ पाते श्रेष्ठ-क्लिष्ट भाषा,
धर्म-दर्शन व विज्ञान-गणित सहित भाषा।

समास-संधि-उपसर्ग-प्रत्यय-तत्सम शब्द,
शुद्ध उच्चारण युक्त, आगमनिष्ठ ज्येष्ठ भाषा।। (4)

नय प्रमाण व अनेकांत युक्त, अनुभव युक्त आध्यात्मिक,
स्वाभिमान युक्त दीन-दंभ रिक्त 'सोऽहं' 'अहं' संयुक्त।

ख्याति-पूजा-लाभ-प्रसिद्धि रहित ज्ञान-वैराग्य संयुक्त,
नहीं समझ पाते हैं मेरी साहचर्य युक्त भाषा।। (5)

व्यवहार व आध्यात्मिक दृष्टि से उत्तम पुरुष एक वचन,
संस्कृत में 'अहं' होता है प्रचलित हिन्दी में 'मैं' होता।

तथापि अधिकतर हिन्दी भाषी 'मैं' के स्थान में बोलते 'हम',
अनुभवपूर्ण आध्यात्मिक कथन में (भी) 'मैं' शब्द को मानते दंभ।। (6)

इसलिए वे मेरे 'मैं' प्रयोग को गलत समझ लेते,
किन्तु 'मैं' का अर्थ 'आत्मा' समझाने से वे प्रभावित होते।

ऐसा ही जब मेरी भाषा के बारे में होता सही ज्ञान,
स्वभाषा की कमी समझते मेरी भाषा को मानते उच्चतम।। (7)

गुण-गुणी व गुरु-शिष्यों की करता हूँ मैं प्रशंसा,
अध्ययन-अध्यापन-आगम ज्ञान की जब करूँ प्रशंसा।

इसे भी अधिकांश लोग समझ लेते है 'अहंकार',
जब ज्ञान होता यह तो 'विनय' तप करते मेरी प्रशंसा।। (8)

ज्ञान प्रचार हेतु गुरु आज्ञा पालनार्थे करता हूँ ग्रंथ रचना,
देश-विदेशों के जैन-जैनेतर स्वेच्छा से करते प्रकाशन।

इसे भी कुछ लोग गलत माने किन्तु जब समझाया,
स्व-गलती वे माने प्रायश्चित्त हेतु स्वेच्छा से बने ज्ञान दाता।। (9)

अन्य के दोष जानने पर भी दोषी की भी न करूँ निन्दा,
इसे भी कुछ मेरे दोष मानते, समझाने पर त्यागते परनिंदा।

ख्याति-पूजा-लाभ (प्रसिद्धि) व भीड़ (व) धन से रहा हूँ मैं निस्पृह,
इसे भी अधिक जन गलत मानते सही ज्ञान से बढ़ती श्रद्धा।। (10)

इन सब कारणों से जैन-अजैनों में बढ़ रही मेरे प्रति श्रद्धा,
स्व-भावना से प्रेरित होकर, करते दान से लेकर सेवा।

आहार-औषधि-ज्ञान-उपकरणों का करते वे दान,
चातुर्मास प्रवास हेतु करते वे बार-बार निवेदन।। (11)

इससे मुझे और भी अधिक मिलती शिक्षा व प्रेरणा,
पूर्वोक्त सभी मेरे गुणों को, और भी बढ़ाने की भावना।

इस हेतु मैं व संघस्थ साधु-साध्वी भी साधनारत,
आत्मविशुद्धि बढ़ाने हेतु 'कनकनंदी' साधनारत।। (12)

चितरी, दिनांक 08.11.2017, रात्रि 11.44

(मेरे अनेक आचार्य-साधु-साध्वी तथा गृहस्थ भक्त-शिष्यों के कारण यह कविता बनी।)

एकांत में रहकर आत्मविशुद्धि की मेरी भावना क्यों!?

एकांत (जंगल-ग्राम) में मेरे मौन रहने के कारण

-आचार्यश्री कनकनंदी

(चाल : मन रे! तू काहे न धीर धरे....., सायोनारा.....)

जिया रे! तू एकांत निवास करऽऽऽ
निस्पृह निराडम्बर मौन-समता से...आत्मा को पावन करऽऽऽ...(ध्रुव)...

तुझे न चाहिए धन-जन-मान...प्रसिद्धि व भौतिक निर्माणऽऽऽ
पर को प्रभावित करना (व) पर प्रतिस्पर्धा...वर्चस्व व धार्मिक मिथ्याचारऽऽऽ
तेरा लक्ष्य तो शुद्ध-बुद्ध-आनंदऽऽऽ...जिया।।...(1)...

भीड़ में होती है भेड़-भेड़िया चाल...अंधानुकरण व वर्चस्वकरऽऽऽ
स्वयं को बड़ा जताने व बताने हेतु...होता नवकोटि से भाव-व्यवहारऽऽऽ
भीड़तंत्र को तू न स्वीकार करऽऽऽ...जिया।।...(2)...

तीर्थंकर मुनि भी ऐसा ही करते...एकांत-मौन में करते साधनाऽऽऽ
चौसठ ऋद्धि व चार ज्ञानधारी होते...तो भी न करते प्रवचन (बाह्य) प्रभावनाऽऽऽ
सर्वज्ञ बनने हेतु करते साधनाऽऽऽ...जिया।।...(3)...

इनके सम अभी नहीं पूर्णतः संभव...शक्ति के अनुसार करो साधनाऽऽऽ
इच्छा-दबाव व आदेश रहित...समता से करो आत्मसाधनाऽऽऽ
द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावानुसार साधनाऽऽऽ...जिया।।...(4)...

तेरा उद्धार (तो) तू अभी तक न कर सकता...कैसे करेगा तू पर उद्धारऽऽऽ
आत्महित को तू पहले सही करो...परहित करो इसके अनंतरऽऽऽ
स्व-पर-प्रकाशी तू बन/(स्व-पर प्रकाशित तू कर)ऽऽऽ...जिया।।...(5)...

स्व-सुधार बिन पर उपकार भी...न होता है उत्तम प्रकारऽऽऽ
तेरा पतन तू कभी (भी) न कर...बुझा हुआ दीप न बने तमहरऽऽऽ
प्रज्ज्वलित दीप से स्वतः (होता) तमहरऽऽऽ...जिया।।...(6)...

अधिकतर जन होते मन्यमाना ज्ञानी...स्वयं को ही मानते श्रेष्ठ-ज्येष्ठऽऽऽ
हितोपदेश भी न करते श्रवण-ग्रहण...सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि में लीनऽऽऽ

फैशन-व्यसन भोग में लीन/(अस्त-व्यस्त व संत्रस्त जीवन)ऽऽऽ...जिया।।...(7)...

(आत्म) उपकार को भी अपकार भी मानते...करते निंदा-अपमान-विरोधऽऽऽ
और भी अधिक वे पापी बनते...पाप करने हेतु न बनो निमित्तऽऽऽ
तेरा तो स्व-पर विश्व कल्याण भावऽऽऽ...जिया।।...(8)...

संकीर्ण-कट्टर-रूढ़ि-परंपराधीन...ख्याति-पूजा-लाभ के आधीनऽऽऽ
भेड़-भेड़ियाचाल से चाहते वर्चस्व...समता-शांति-शुचिता शून्यऽऽऽ
न करेंगे तेरा उपदेश ग्रहण/('कनक' अतः तू करो आत्मकल्याणऽऽऽ) जिया।।...(9)...

मेरी भावना-साधना-उपलब्धि

-आचार्यश्री कनकनंदी

(चाल : यमुना किनारे....., सायोनारा.....)

चिंतन करूँ किन्तु चिंता न करूँ, ऐसी भावना मैं करता हूँ।
स्व-पर-विश्व कल्याण की भावना, नवकोटि से मैं करता हूँ।।
समीक्षा करूँ किन्तु निंदा न करूँ, ऐसी भावना मैं करता हूँ।
हितकर सत्य सदा मैं बोलूँ, अहितकर सत्य भी नहीं बोलूँ।। (1)
स्व-पर गुण-दोषों से शिक्षा मैं लहूँ, स्व-पर दोष दूर हेतु यत्न मैं करूँ।
स्व-दोष मानूँ पर दोष न गहूँ, पर दोष हेतु मैं दोषी न बनूँ।।
श्रद्धा मैं करूँ अंधश्रद्धा मैं त्यागूँ, सनम्र सत्यग्राही जिज्ञासु बनूँ।
कट्टर-रूढ़ि-परंपरा-संकीर्णता त्यागूँ, व्यवहार सत्य से ले परम सत्य जानूँ/(मानूँ)।। (2)
ज्ञानी मैं बनूँ मिथ्याज्ञान मैं त्यागूँ, अनुभवपूर्ण ज्ञानी मैं बनूँ।
हठाग्रह-पूर्वाग्रह-जानकारी से परे, शोध-बोध-अनुभव मैं करूँ।।
चारित्र पालूँ सौम्य-शांति पालूँ, ढोंग-पाखण्ड-आडम्बर मैं त्यागूँ।
अधर्मी-कुधर्मी-विधर्मी प्रति भी, कुभावना से भाव-व्यवहार न करूँ।। (3)
धर्म मैं पालूँ ख्याति-पूजा मैं त्यागूँ, आत्मविशुद्धि हेतु ही साधना करूँ।
भीड़-प्रदर्शन व वर्चस्व बिना, निस्पृह-निराडम्बर साधना करूँ।।
हर विषय जानूँ सत्य-तथ्य पहचानूँ, हिताहित विवेक हेतु सभी मैं जानूँ।
किन्तु हित सत्य को ही स्वीकार करूँ, नकलची अहितकर सभी मैं त्यागूँ।। (4)

आत्महित मैं करूँ पर-अहित न करूँ, आत्म हितकर पर हित न करूँ।
आत्मप्रकाशी बनूँ पर प्रकाशी बनूँ, अज्ञानी होकर ज्ञान कैसे मैं दूँ?।।
(ज्ञान) सूर्य मैं बनूँ स्वतः प्रकाश फैले, ज्ञान पिपासु स्वतः ज्ञान ग्रहण करें।
तीर्थंकर मुनि सम मौन एकांत गहूँ, बाह्य प्रभावना हेतु संक्लेश न करूँ।। (5)
मनोरंजन परे आत्ममंजन/(आत्मरंजन) हेतु, लोकसंग्रह से परे लोकमंगल हेतु।
भेड़-भेड़िया (चाल) परे मौलिक-पावन हेतु, एकला भी चलकर लक्ष्य/(सत्य) पाने के हेतु।।
लक्ष्यानुसार संकल्पनिष्ठ मैं रहूँ, संकल्प-विकल्प संक्लेश त्यागूँ।
मतिश्रुतज्ञान से परिकल्पना करूँ, कपोलकल्पित मिथ्या भाव मैं त्यागूँ।। (6)
तन-मन-इंद्रियों का मैं सदुपयोग भी करूँ, समय-शक्ति-साधनों का प्रयोग करूँ।
किन्तु इससे परे स्व-की प्राप्ति मैं चाहूँ, चैतन्य चमत्कार स्वरूप स्वयं को चाहूँ।।
आत्मनिष्ठा व धैर्य-साहस युक्त, सरल-सहजता विनम्रता सहित।
मोह-क्षोभ रहित चैतन्य शक्ति युक्त, शुद्ध-बुद्ध-आनंद है 'कनक' का प्राप्य।। (7)

तुझमें ही तेरा अंतरात्मा व परमात्मा

तुझमें ही समाहित तेरा परमात्मा, कहाँ ढूँढ़ रहा है बहिरात्मा।
तिल में तैल दूध में घृत सम, तुझमें ही तेरा अंतः परमात्मा।।
यथा बीज ही बनता अंकुर से वृक्ष, द्रव्य-क्षेत्र-कालादि निमित्त पाकर।
तथाहि भव्य ही बनते भगवान्, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावादि को पाकर।। (1)
इस हेतु तुझे भी त्यागना होगा, बहिरात्मा रूपी मोह-राग-भाव।
शरीर-सत्ता-संपत्ति न तेरा स्वरूप, तू तो सच्चिदानंदमय अमूर्त जीव।।
ऐसी श्रद्धा-प्रज्ञा से बनोगे अंतरात्मा, अष्टमद-सप्तव्यसन-रहितपना।
सच्चे-देव-शास्त्र-गुरु धर्म में आस्था, दान-दया-सेवा-परोपकार सहित।। (2)
ज्ञान वैराग्य सहित बनोगे श्रमण, अंतरंग-बहिरंग ग्रंथ त्याग से।
ध्यान-अध्ययन व मनन चिंतन से, विकास होगा तेरा ही अंतरात्मा।।
ख्याति-पूजा-लाभ-वर्चस्व रहित, समता-शांति-निस्पृहता युक्त।
आत्मविशुद्धि आत्मरमण द्वारा, अंतरात्मा से बनोगे परमात्मा।। (3)
परमात्मा में पाओगे शुद्ध-बुद्ध-आनंद, जन्म-जरा-मरण रहित पद।
अनंत ज्ञान-दर्श-सुख-वीर्य संपन्न, इस हेतु ही बना 'कनक' श्रमण।। (4)

विषयानुक्रमणिका

अ.क्र.	विषय	पृ.सं.
1.	निस्पृही गुरु कनकनंदी जी	2
2.	आचार्यश्री के अलौकिक व्यक्तित्व के प्रति मेरी भावनाएँ	2
3.	गुरु बिना आध्यात्मिक ज्ञान नहीं होता, अतः मैं आचार्यश्री के पास आकर अध्ययन करना चाहता हूँ	3
4.	स्व-आत्म-निंदा-गर्हा-आलोचना-प्रायश्चित्त-प्रतिक्रमण	4
5.	हिन्दी भाषा को शुद्ध व व्यापक बनाने हेतु मेरा आह्वान	5
6.	आचार्यश्री कनकनंदी जी गुरुदेव श्रीसंघ की सरलता/निस्पृहता/ निराडम्बरता/उदारता	6
7.	'कनक' गुरु का मैं/(अहं) आत्मज्ञान	7
8.	आचार्य कनकनंदी गुरुदेव से विनती	8
9.	(मेरा अनुभव) ''स्व-हिन्दी भाषा की कमी से आचार्य श्री कनकनंदी की श्रेष्ठ हिन्दी अन्य लोग सही नहीं समझ पाते व गलत मानते''	8
10.	महान् भाषाविद् आचार्यश्री कनकनंदी गुरुवर की परिष्कृत भाषा अन्यजन क्यों नहीं समझ पाते?!	10
11.	आचार्य कनकनंदी बहुगुणधारी	11
12.	मेरी योग्य सरल भाषा (बोली) बिन ज्ञानदान की मेरी समस्या	11
13.	मेरे अनुभव स्व-अज्ञान व दोष परिज्ञान से विकास	12
14.	एकांत में रहकर आत्मविशुद्धि की मेरी भावना क्यों!? एकांत (जंगल-ग्राम) में मेरे मौन रहने के कारण	15
15.	मेरी भावना-साधना-उपलब्धि	16
16.	तुझमें ही तेरी अंतरात्मा व परमात्मा	17
	आध्यात्मिक प्रेम	
1.	स्व-वैभव चिंतन से...	20
2.	जिनवर के आदर्श अपनाने से मुझे प्राप्त अनुभव व लाभ	24

3.	स्वयं से पावन प्रेम करूँ	25
4.	अनुभव को बढ़ाता हुआ बढ़ रहा हूँ	29
5.	प्रेम का पावन स्वरूप	30
6.	स्व-परमात्मा को स्वयं में ही पाऊँ	31
7.	स्व-उपासना/(पूजा) हेतु करूँ सभी उपासना/(पूजा)	32
8.	सत्य! तेरा अनंत रूप	42
9.	कार्य-कारण-संबंध व इससे परे परम सत्य	51
10.	विरोध सापेक्ष अविरोध	52
11.	सहज V/S दुर्लभ	54
12.	धन्य हे! पावन मानव महान्	59
13.	भौतिक सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि से परे आध्यात्मिक उपलब्धि से शांति	65
14.	द्रव्य हिंसा से भी महान् हिंसा : परिग्रह	73
15.	असफल व सफल मानव जीवन	96
16.	अज्ञानी-मोही स्व-दोषों को नहीं जानते	98
17.	मैं हूँ मान (मद)/अहंकार की आत्मकथा	99
18.	नीच प्राणी भी स्वयं को श्रेष्ठ मानकर महान् को भी नीच मानते	100
19.	हाय रे! मानव संकीर्ण वाला...!?	101
20.	हाय रे! मानव भौतिक वाला	107
21.	गुरुवर के गुण प्राप्ति हेतु गुरु की पूजा	108
22.	स्वाध्याय परम तप क्यों!?	109
23.	संसार भ्रमण से परे मोक्षमार्ग	113
24.	परम वैभव प्राप्ति के उपाय	115
25.	प्रेम तेरी अजस्र धारा	120
26.	निस्पृह संत की साधना V/S मोही संत की प्रभावना	141
27.	मेरी स्व-प्रभावना व बाह्य प्रभावना	142
28.	गुणी गुरु से सुयोग्य शिष्य होते स्वयमेव प्रेरित	143
29.	अज्ञानी-मोही से परे मेरा आत्मविकास	144

स्व-वैभव चिंतन से...

-आचार्यश्री कनकनंदी

(चाल : मन रे.....!, सायोनारा.....)

जिया रे! तू स्व-वैभव चिंतन करऽऽऽ
तेरा वैभव है आत्म-वैभव...उसका तू स्मरण/(कथन) करऽऽऽ...(स्थायी)...
तू हो! सच्चिदानंद (मय) आत्म स्वरूपी...अनंत ज्ञान-दर्श-सुख-वीर्यमयऽऽऽ
राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोध शून्य...तन-मन-इंद्रिय रिक्तऽऽऽ
शुद्ध-बुद्ध-आनंद युक्तऽऽऽ...जिया...(1)...
तेरा ही चिंतन-मनन-ध्यान...अध्ययन व करो अध्यापनऽऽऽ
जिज्ञासा-समाधान व शोध-बोध...लेखन व करो प्रवचनऽऽऽ
इससे ही होगा तेरा उत्थानऽऽऽ...जिया...(2)...
इस हेतु भले अन्य ज्ञानार्जन कर...किन्तु लक्ष्य रहे स्व-स्वरूपऽऽऽ
स्व-स्वरूप रिक्त अन्य सभी तत्त्व...होते हैं पर या अनात्म तत्त्वऽऽऽ
परतत्त्व लीनता/(मोहित) ही है मिथ्यात्वऽऽऽ...जिया...(3)...
रागी-द्वेषी-मोही-कामी-क्रोधी-स्वार्थी...न जानते हैं तेरा स्वरूपऽऽऽ
वे तो सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि आसक्त...तन-मन-इंद्रियों को मानते स्वरूपऽऽऽ
इनसे विपरीत तेरा स्वरूपऽऽऽ...जिया...(4)...
इसलिए वे तुझे विपरीत माने...मोह-महा-मद से हो मदमस्तऽऽऽ
इनसे रखो तू माध्यस्थ भाव...उनसे भी न करो तू राग-द्वेषऽऽऽ
स्व-पर विश्व हित में हो चित्तऽऽऽ...जिया...(5)...
जन्मांध अंधे यथा सूर्य न देखते...नयन भी न देखते स्वयं कोऽऽऽ
अज्ञानी-मोही तथा न स्वयं को जानते...वे कैसे जानेंगे तुझकोऽऽऽ
तू तो अमूर्तिक सच्चिदानंदऽऽऽ...जिया...(6)...
स्व-वैभव चिंतन व ज्ञान-ध्यान से...स्व-वैभव होंगे विकसितऽऽऽ
राग-द्वेष-मोहादि विभाव नशेंगे...स्व-वैभव मिलेंगे परिपूर्णऽऽऽ
'कनक' बनोगे शुद्ध-बुद्ध-आनंदऽऽऽ...जिया...(7)...

चितरी, दिनांक 03.11.2017, अपराह्न 5.31

संदर्भ-

मुमुक्षु का कर्त्तव्य

अविद्याभिदुरं ज्योति, परं ज्ञानमयं महत्।
तत्प्रष्टव्यं तदेष्टव्यं, तद् द्रष्टव्यं मुमुक्षुभिः।। (49)

That excellent and supreme light of the self is the destrayer of ignorance, the seekers after saluation should always angage themselves in questioning others about it, in ectionately deeking it and in realizing if by actual exprionce!

पूर्वोक्त विषय को आचार्यश्री और भी बताते हैं-मुमुक्षु को सतत उस आनंद स्वरूप, ज्ञानमय, आत्म प्रकाशक अविद्या रूपी अंधकार को भेदन करने वाली परम चित्ज्योति, विघ्नों को छेदन करने वाला महान् विपुल, इन्द्रादि से पूज्यनीय चैतन्य प्रकाश के बारे में गुरु आदि से सतत पूछना चाहिए तथा उसकी इच्छा करनी चाहिए एवं उसका ही अनुभव करना चाहिए। आचार्य गुरुदेव ने शिष्य के प्रति परम करुणा से प्लावित होकर शिष्य को आत्म तत्त्व के बारे में विशेष ज्ञान कराने के लिए व उसमें स्थिर करने के लिए आत्म तत्त्व का सविस्तार यहाँ वर्णन किया है।

समीक्षा-संसारी जीव अनादि अनंत काल से स्व-आत्म स्वरूप को भूलकर उससे दूर होकर, उससे च्युत होकर पर द्रव्य में ही रचा है, पचा है, अनुभव किया है और अपनाया है। अतएव ऐसे चिर-विस्मरणीय उपेक्षित स्व-आत्म द्रव्य और आत्म स्वरूप का ज्ञान, श्रद्धान, आचरण और उसकी उपलब्धि बहुत ही दुरूह है, क्लिष्ट साध्य है। कुंदकुंद देव ने कहा भी है-

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलभो विहत्तस्स।। (4) समयसार पृष्ठ-1

(सुदा) अनंत बार सुनी गई है (परिचिदा) अनंत बार परिचय में आई है (अणु भूदा) अनंत बार अनुभव में भी आई है। (सव्वस्स वि) सब ही संसारी जीवों के (काम भोग बंध कहा) काम शब्द से स्पर्शन और रसना, इन्द्रिय के विषय और भोग शब्द से घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन्द्रिय के विषय लिए गए हैं उनके बंध या संबंध की कथा अथवा बंध शब्द के द्वारा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंध एवं उसका फल नर-नारकादि रूप लिया जा सकता है, इस प्रकार काम, भोग और

बंध की कथा जो पूर्वोक्त प्रकार से श्रुत-परिचित और अनुभूत है इसलिए दुर्लभ नहीं किन्तु सुलभ है। (एयत्तस्स) परन्तु एकत्व का अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र के साथ एकता को लिए हुए परिणमन रूप जो निर्विकल्प समाधि उसके बल से अपने आपके अनुभव में आने योग्य शुद्धात्मा का स्वरूप है उस एकत्व का (अवलंभों) उपलंभ संप्राप्ति अर्थात् अपने उपयोग में ले आना (णवरि) वह केवल (ण सुलभो) सुलभ नहीं है (विहतस्स) कैसे एकत्व का? रागादि से रहित एकत्व का। क्योंकि वह न तो कभी सुना गया न कभी परिचय में आया और न अनुभव में ही लाया गया।

उपर्युक्त कारण से आचार्यश्री ने कहा कि-हे मोक्ष सुख के इच्छुक भव्य! तुम सतत मोक्ष स्वरूप स्व-आत्म तत्त्व का चिंतन, मनन, श्रवण, निनिध्यासन, ध्यान करो। ग्रंथकार ने समाधितंत्र में व्यक्त करते हुए कहा है-

तद् ब्रूयात्तत्परान्पृच्छेत् तदिच्छेत्तत्परो भवेत्।
येनाविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत्।।

योगी को चाहिए कि वह उस समय तक आत्म ज्योति का स्वरूप कहे, उसी के संबंध में पूछे, उसी की इच्छा करे और उसी में लीन होवे जब तक अविद्या (अज्ञान) जन्य स्वभाव दूर होकर विद्यामय न हो जावे।

अष्टावक्र गीता में भी प्रकारान्तर से इस विषय का प्रतिपादन मुनि अष्टावक्र ने निम्न प्रकार से किया है-

एको विशुद्धबोधोऽहमिति निश्चयवह्निना।
प्रज्वाल्याज्ञानगहन वीतशोकः सुखीभव।। (9)

फिर शिष्य प्रश्न करता है कि, आत्मज्ञानरूपी अमृतपान किस प्रकार करूँ? तब गुरु समाधान करते हैं कि हे शिष्य! मैं एक हूँ अर्थात् मेरे विषे सजाति-विजाति का भेद नहीं और स्वगत भेद भी नहीं है, केवल एक विशुद्ध बोध और स्व-प्रकाश रूप हूँ, निश्चय रूपी अग्नि से अज्ञान रूपी वन को भस्म करके शोक, मोह, राग, द्वेष, प्रवृत्ति, जन्म, मृत्यु इनके नाश होने पर शोक रहित होकर परमानंद को प्राप्त हो।

यत्र विश्वमिदं भाति कल्पितं रज्जुसर्पवत्।
आनन्दपरमानन्दः स बोधस्त्वं सुखंचर।। (10)

यहाँ शिष्य शंका करता है कि, आत्मज्ञान से अज्ञानरूपी वन के भस्म होने पर

भी सत्यरूप संसारी की निवृत्ति न होने के कारण शोक रहित किस प्रकार होऊँगा? तब गुरु समाधान करते हैं कि, हे शिष्य! जिस प्रकार रज्जु के विषे सर्प की प्रतीति होती है और उसका भ्रम प्रकाश होने से निवृत्ति हो जाती है, उसी प्रकार ब्रह्मा के विषे जगत् की प्रतीति अज्ञान कल्पित है, ज्ञान होने से नष्ट हो जाती है। तू ज्ञानरूप चैतन्य आत्मा है, इस कारण सुखपूर्वक विचर। जिस स्वप्न में किसी पुरुष को सिंह मारता है तो वह बड़ा दुःखी होता है परन्तु निद्रा के दूर होने पर उस कल्पित दुःख का जिस प्रकार नाश हो जाता है उसी प्रकार तू ज्ञान से अज्ञान का नाश करके सुखी हो। फिर शिष्य प्रश्न करता है कि हे गुरो! दुःख रूप जगत् अज्ञान से प्रतीत होता है और ज्ञान से उसका नाश हो जाता है परन्तु सुख किस प्रकार प्राप्त होता है? तब गुरु समाधान करते है कि हे शिष्य! दुःखरूपी संसार के नाश होने पर आत्मा स्वभाव से ही आनंद स्वरूप हो जाता है, मनुष्य लोक से तथा देवलोक से आत्मा का आनंद परम उत्कृष्ट और अत्यंत अधिक है।

भावार्थ-अंतरात्मा को चाहिए कि पदार्थ के स्वरूप को जैसा का तैसा जाने, अन्य में अन्य का आरोपण न करे। अनादि काल से आत्मा की शरीर के साथ एकत्व बुद्धि हो रही है, उसका मोह दूर होना कठिन जानकर आचार्य महोदय बार-बार अनेक युक्तियों से उसी बात को समझाकर बतलाते हैं-उनका अभिप्राय यही है कि संयुक्त होने पर भी विवक्षा-भेद से, पुद्गलकों पुद्गल और आत्मा को आत्मा समझना चाहिए तथा कर्मकृत औपाधिक भावों को कर्मकृत ही मानना चाहिए। आत्मा का किसी शरीररूप विभाव पर्याय में स्थिर होना उसकी कर्मोपाधि-जनित अवस्था है-स्वभाव नहीं। शरीर को आत्मा मानना, ग्रह को ग्रहवासी अथवा वस्त्र को वस्त्रधारी मानने के समान भ्रम है।

अज्ञापितं न जानन्ति यथा मां ज्ञापितं तथा।
मुढात्मानस्ततस्तेषां वृथा मे ज्ञापनश्रमः।। (58)

भावार्थ-जो ज्ञानी जीव अंतर्मुखी होते हैं वे बाह्य विषयों से अपने चित्त को अधिक नहीं भ्रमाते-उन्हें तो अपने आत्मा के चिन्तन और मनन में लगे रहना ही अधिक रुचिकर होता है। मूढ़ात्माओं के साथ आत्म-विषय में मगज-पच्ची करना उन्हें नहीं भाता। वे इस प्रकार जड़ात्माओं के साथ टक्कर मारने के अपने परिश्रम को

व्यर्थ समझते हैं और समझते हैं कि इस तरह मूढ़ात्माओं के साथ उलझे रहकर कितने ही ज्ञानीजन अपने आत्महित साधन से वंचित रह जाते हैं। आत्महित साधन सर्वोपरि मुख्य है, उसे इधर-उधर के चक्कर में पड़कर भुलाना नहीं चाहिए।

यद् बोधयितुमिच्छामि तन्नाहं यदहं पुनः।

ग्राह्यं तदपि नान्यस्य तत्किमन्यस्य बोधये।। (59)

भावार्थ-तत्त्वज्ञानी अंतरात्मा अपने उपदेश की व्यर्थता को सोचता हुआ पुनः विचारता है कि-जिस आत्मस्वरूप को शब्दों द्वारा मैं दूसरों को बतलाना चाहता हूँ वह तो सविकल्प है-आत्मा का शुद्ध स्वरूप नहीं है; और जो आत्मा का वास्तविक शुद्ध स्वरूप है वह शब्दों द्वारा बतलाया नहीं जा सकता-स्वसंवेदना के द्वारा ही अनुभव एवं ग्रहण किये जाने के योग्य है; तब दूसरों को मेरे उपदेश देने से क्या नतीजा?

बहिस्तुष्यति मूढात्मा पिहितज्योतिरन्तरे।

तुष्यत्यन्तः प्रबुद्धात्मा बहिर्व्यावृत्तकौतुकः।। (60)

भावार्थ-मूढ़ात्मा और प्रबुद्धात्मा की प्रवृत्ति में बड़ा अंतर होता है। मूढात्मा मोहोदय के वश महाअविवेकी हुआ समझाने पर भी नहीं समझता और बाह्य विषयों में ही संतोष मानता हुआ फँसा रहता है। प्रत्युत इसके, प्रबुद्धात्मा को अपने आत्म स्वरूप में लीन रहने में ही आनंद आता है और इसी से वह बाह्य विषयों से अपने इन्द्रिय व्यापार को हटाकर प्रायः उदासीन रहता है।

जिनवर के आदर्श अपनाने से मुझे प्राप्त अनुभव व लाभ

-आचार्यश्री कनकनंदी जी

(चाल : हे! जिनवर....., सायोनारा.....)

हे! जिनवर तेरा पावन संदेश/(आदर्श)...अनुभव में आ रहे सत्य सिद्धांत...

श्रद्धा-प्रज्ञा-चर्या के द्वारा...प्रयोग से मिले आत्मिक आनंद...(ध्रुव)...

मोक्षमार्ग जो आपने कहा...हर क्षेत्र में सत्य ही पाया...

आत्मविश्वास-ज्ञान-चारित्र द्वारा... हर क्षेत्र में मिलती सफलता...

क्रोध-मान-माया-लोभ-त्याग से...अशांति-चिंता-चंचलता जाती...

समता-शांति-स्थिरता आती...श्रद्धा-प्रज्ञा में वृद्धि/(शुद्धि) होती...
ख्याति-पूजा व लाभ त्याग से...संकल्प-विकल्प-संक्लेश नशे...
दीन-हीन व अहंकार नशे...'स्वाभिमान' 'सोऽहं' 'अहं' भाव जगे...
आत्म विश्लेषण व आत्म सुधार से...दोष दूर होते सुगुण बढ़ते...
परनिंदा-अपमान-वैरत्व नशे...मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थ बढ़े...
स्वकर्त्ता-धर्त्ता स्वयं बनने से...पर कर्तृत्व व वर्चस्व घटते...
स्वावलंबन अनुशासन बढ़े...पर-प्रपंच द्वंद्वादि घटते...
सामाजिक लंद-फंद त्यागते...धन-जन-मान समस्या घटे...
ध्यान-अध्ययन शोध-बोध बढ़े...अध्यापन-लेखन-प्रचार बढ़े...
संकीर्ण धार्मिक कट्टर रूढ़ि से...दूर होने से सत्य जिज्ञासा बढ़े...
उदार-पावन-भाव-व्यवहार होते...स्व-पर-विश्व मंगल भाव जगते...
अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा त्याग से...स्वतंत्र-मौलिक भाव-काम होते...
समय-शक्ति का न होता अपव्यय...सर्वांगीण विकास होता प्रचुर...
द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के अनुसार...शक्ति अनुसार तप-त्याग से...
संक्लेश-रोग आदि नहीं सताते...आत्मविशुद्धि-आत्मशक्ति बढ़ती...
इससे हर कार्य होते सरल-सहज...इससे प्रभावित होते अन्य जन...
भाव से प्रभावित हो करते सेवा-दान...जिससे साधना मेरी होती उत्तम...
अनुभव से बढ़ती श्रद्धा व प्रज्ञा...जिससे बढ़ती स्थिरता-निर्मलता...
जिससे प्रभावना बढ़ती जाती...'कनक' की निस्पृहता बढ़ती जाती...

चितरी, दिनांक 01.11.2017, रात्रि 8.43
(यह कविता नितिन (सीपुर), भूपेश, दीपेश (चितरी) के कारण बनी।)

स्वयं से पावन प्रेम करूँ

-आचार्यश्री कनकनंदी

(चाल : मन रे!...., सायोनारा.....)
जिया रे! तू स्वयं को पावन करऽऽ

स्व-पावन से होगा सभी ही उत्तमऽऽ यह तू निश्चय करऽऽ...(ध्रुव)...

स्वयं से पावन प्रेम कर...स्वयं से न करो दुर्व्यवहारऽऽऽ
दीन-हीन व अहंकार छोड़...(छोड़ो) ईर्ष्या-तृष्णा-घृणा मिथ्याचारऽऽऽ
समता शांति वर रेऽऽऽ...जिया...(1)...

जिससे तुझे होता है संक्लेश...होता संकीर्ण भाव-व्यवहारऽऽऽ
समता-शांति-शुचिता नशती...वे सभी स्व-प्रति क्रूर/(अप्रेम) व्यवहारऽऽऽ
इससे परे आत्मा प्रेम तू करऽऽऽ...जिया...(2)...

स्व-प्रेम बिन पर प्रेम न संभव...स्व-प्रकाशी बिन न पर-प्रकाश संभवऽऽऽ
आत्महित सह परहित भी संभव...तरण-तारण होना है संभवऽऽऽ
अतः तू स्व-आत्म प्रेम करऽऽऽ...जिया...(3)...

आत्म परिणाम-हिंसा से अप्रेम...आत्म परिणाम शुचिता है प्रेमऽऽऽ
आत्मशांति से परशांति संभव...स्वयं में जो होता वह देना संभवऽऽऽ
अतः स्वयं आत्मप्रेम करऽऽऽ...जिया...(4)...

अन्य प्रति यदि होगा अदया भाव...स्व-प्रति भी होगा वह अप्रेम भावऽऽऽ
अदया भाव से तेरी होगी आत्म हिंसा...अहिंसा भाव से आत्म अहिंसाऽऽऽ
अतः स्व-पर अहिंसा पालोऽऽऽ...जिया...(5)...

तीर्थंकर आदि भी ऐसा ही करते...क्रूर जीव न स्व-प्रेम करतेऽऽऽ
अशुभ-शुभ-शुद्ध भाव स्वयं में होते...स्व-परिणाम से परिणाम मिलतेऽऽऽ
'कनक' तू शुद्धात्मा परिणामी बनऽऽऽ...जिया...(6)...

चितरी, दिनांक 03.11.2017, मध्याह्न 2.12
(यह कविता 'जीत का जश्न' 'लुईस अल हे' से भी प्रभावित है।)

संदर्भ-

किसी ने मुझसे कहा, ''आपने मुझे सबसे चमत्कारी उपहार दिया है-आपने मुझे मेरे स्वयं का उपहार दिया है।'' हममें से बहुतेरे स्वयं को अपने आपसे छिपाकर रखते हैं और यह भी नहीं जान पाते कि हम स्वयं कौन हैं? हम क्या महसूस करते हैं, यह हम नहीं जानते और यह भी नहीं जानते कि हम चाहते क्या हैं? जीवन स्वयं

के खोज की यात्रा है। मेरे लिए तो मुक्त होना या निर्वाण पाने का माध्यम है अपने भीतर प्रवेश कर यह जानना कि हम वास्तव में क्या हैं और कौन हैं तथा यह जानना कि हम स्वयं को प्रेम कर एवं स्वयं का खयाल रख अपने को बदलने की योग्यता रखते हैं। स्वयं को प्रेम करना स्वार्थ नहीं है। यह तो स्वार्थ को मिटाता है, ताकि दूसरों से प्रेम करने के लिए स्वयं से पर्याप्त प्रेम कर सकें। जब हम विशाल प्रेम और खुशी के सागर में गोता लगाना सीख लेते हैं तो हम सचमुच संसार की मदद कर सकते हैं। इस अविश्वसनीय ब्रह्मांड की रचना करने वाली शक्ति को 'प्रेम' कहा गया है। ईश्वर प्रेम ही तो है। हम प्रायः यह उद्धरण सुनते रहे हैं-प्रेम से दुनिया चलती है। यह बिलकुल सत्य है। प्रेम ही वह बंधन है, जो समस्त ब्रह्मांड को एकजुट रखे हुए है।

मेरे अनुसार प्रेम एक गहरी प्रशंसा है। जब मैं स्वयं को प्रेम करने की बात कहता हूँ तो इससे मेरा तात्पर्य हम जो हैं, उसके प्रति हमारी गहरी प्रशंसा के भाव होने से है। हम अपने स्वयं के विभिन्न हिस्सों में से प्रत्येक को स्वीकार करते हैं- अपनी छोटी-छोटी विचित्रताओं को, परेशानियों को, जिन बातों को हम उतनी अच्छी तरह नहीं कर सकते और सभी आश्चर्यजनक गुणों को भी हम प्रेम के संपूर्ण पैकेज को स्वीकार करते हैं, वह भी बिलकुल निःशर्त।

दुर्भाग्यवश, हममें से कई स्वयं को तब तक प्रेम नहीं करेंगे, जब तक कि हमारा वजन कम न हो जाये, हमें वेतन वृद्धि या ब्वाय फ्रेंड और कुछ न मिल जाये। हम अपने प्रेम के लिए प्रायः कोई-न-कोई शर्त रख देते हैं। लेकिन हम बदल सकते हैं। हम स्वयं को उसी अवस्था में प्रेम कर सकते हैं, जैसे हम अभी हैं।

इस सारे संसार में प्रेम का अभाव भी है। मेरा मानना है कि हमारी इस दुनिया में एड्स नामब बीमारी (बेमेलपन) है, जिससे प्रतिदिन ज्यादा-से-ज्यादा लोग मर रहे हैं। इस शारीरिक चुनौती ने हमें बाधाओं पर विजय पाने और अपने नश्वरता के स्तरों, धर्म व राजनीति के मतभेदों से परे जाने और अपने हृदयों को खोलने का अवसर दिया है। हममें से जितने ज्यादा-से-ज्यादा लोग ऐसा कर सके, उतनी ही ज्यादा तत्परता से हम उत्तर प्राप्त करेंगे।

हम व्यक्तिगत एवं विशाल परिवर्तन के मध्य रह रहे हैं। मेरा मानना है कि इस समय अस्तित्वन् हम सभी लोगों ने इस परिवर्तन के हिस्से, परिवर्तन लाने और

संसार को प्राचीन रूढ़िवादी जीवन के दौर की अपेक्षा प्रेमपूर्ण व शांतिपूर्ण अस्तित्व के लिए, स्वयं को यहाँ होने के लिए चुना है। मीन युग (पिसियन एज) हम अपने रक्षक ईश्वर को 'बाहर' खोजते हुए करते थे-''मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो! कृपया मेरा खयाल रखो।'' अब हम कुंभ युग (एक्वेरियन एज) में प्रवेश कर रहे हैं और हम अपने रक्षक को अपने भीतर तलाशना सीख रहे हैं। जिस शक्ति की खोज में हम थे, वह हम स्वयं ही हैं। हम ही अपने जीवन के प्रभार में हैं।

यदि आप आज स्वयं को प्रेम करना नहीं सीखेंगे तो कल स्वयं को प्रेम नहीं कर पायेंगे; क्योंकि जो भी बहाना आज आपके पास है, वही बहाना कल भी आपके पास होगा। शायद आज से 20 साल बाद भी वही बहाना आपके पास रहे और उसी बहाने को थामे हुए यह जीवनकाल भी आपके हाथ से निकल जाये। आज ही वह दिन है, जब आप पूरी तरह बिना किसी प्रत्याशा के स्वयं को प्रेम कर सकते हैं।

मैं एक ऐसी दुनिया बनाना चाहता हूँ, जहाँ हमारे लिए एक-दूसरे को प्रेम करना सुरक्षित हो, जहाँ हम अपने अस्तित्व को व्यक्त कर सके और अपने आसपास के लोगों द्वारा बिना किसी निर्णय, आलोचना या पूर्व धारणा के प्रेम पा सके और स्वीकार किये जा सकें।

प्रेम करने की शुरुआत घर से होती है। 'बाइबिल' कहती है-'अपने पड़ोसियों से उसी तरह प्रेम कीजिये, जैसे आप स्वयं से करते हैं।' चूँकि प्रायः हम अंतिम ये शब्द भूल जाते हैं-'जैसे आप स्वयं से प्रेम करते हैं।' तब तक हम बाहर किसी और से प्रेम नहीं कर सकते। स्व-प्रेम वह उपहार है, जो हम स्वयं को दे सकते हैं; क्योंकि जब हम अपने अस्तित्व से प्रेम करते हैं तो स्वयं को दुःख नहीं पहुँचा सकते और हम किसी दूसरे को भी दुःखी नहीं कर सकते। आंतरिक शांति होने पर कोई युद्ध नहीं हो सकता है, गिरोह नहीं होंगे, आतंकवादी नहीं होंगे, कोई बेघर-बार नहीं होगा। तब न तो कोई बीमारी (बेमेलपन की स्थिति) होगी, न एड्स होगा, न कैंसर होगा, न गरीबी होगी और न भूखमरी की स्थिति होगी।

तो मेरे अनुसार, विश्व-शांति का नुस्खा यही है-'अपने भीतर शांति रखना।' शांति, समझ, सहृदयता, क्षमाशीलता और इन सबसे सर्वोपरि प्रेम। इन परिवर्तनों को लाने की शक्ति हमारे भीतर है।

-लुईस अलहे

अनुभव को बढ़ाता हुआ बढ़ रहा हूँ

-आचार्य कनकनंदी

(चाल : है अपना दिल....., सायोनारा.....)

अनुभव को मैं बढ़ाता चलूँ, अनुभव से मैं बढ़ता चलूँ।
कोई माने/(जाने) या न माने/(जाने) चिंता मैं छोडूँ, स्व-पर विश्वहित भाव मैं धरूँ।।

अनुभव से अनुभव (परिज्ञान) बढ़ता है, पवित्र भाव से सभी अच्छा होता है।
समता-शांति से होता पवित्र भाव, राग-द्वेष-मोह से रहित भाव।। (1)

ईर्ष्या-तृष्णा-क्षोभ से रहित भाव-संकीर्ण-कट्टरता से रहित भाव।
परनिंदा-अपमान से रहित भाव, ख्याति-पूजा-लाभ से रहित भाव।।

सरल सत्यग्राही उदार भाव, सरल-सहज व विनम्र भाव।
ढोंग-पाखण्ड व आडम्बर रहित, सादा जीवन व उच्च विचार युक्त।। (2)

क्षमा-सहिष्णुता व धैर्य सहित, आत्मविश्वास-ज्ञान-चारित्र युक्त।
आत्मानुशासन-स्वावलंबन युक्त, सच्चिदानंद बनने का लक्ष्य सहित।।

इससे होता आत्मसुधार विशेष, लंद-फंद-द्वंद्व का होता विनाश।
आत्मिक शुद्धता व शक्ति बढ़ती, जिससे आध्यात्मिक उन्नति होती।। (3)

अंतः प्रज्ञा व आत्मानुभूति बढ़ती, शोध-बोध करने में प्रगति होती।
परिकल्पना करने की शक्ति बढ़ती, आत्मिक चेतना सदा जागृत रहती।।

इससे होती है साधना सरल, आत्मिक उपलब्धियाँ होती प्रचुर।
योग्य व्यक्ति भी होते स्वयं प्रभावित, मेरे गुण प्राप्ति हेतु करते प्रयत्न।। (4)

मुझसे ज्ञानार्जन भी वे करते, साधु से लेकर विद्वान् बनते।
गृहस्थ शिष्य दान सेवा करते, देश-विदेशों में धर्म प्रचार करते।।

अंतःबाह्य प्रभावना बढ़ रही है, निस्पृह साधना मेरी बढ़ रही है।
बाह्य प्रवृत्तियाँ (मेरी) घट रही है, 'कनक' को आत्मिक शांति मिल रही है।। (5)

चितरी, दिनांक 15.11.2017, रात्रि 07.37

प्रेम का पावन स्वरूप

-आचार्य कनकनंदी

(चाल : दुनिया में रहना है तो....., सायोनारा.....)

प्यार करो भाई प्यार करो...स्वयं को पहले प्यार करो।
स्वयं को प्यार किये बिना...अन्य को प्यार कैसे दोगे?

जो दीपक पहले (स्वयं) नहीं जला...वह न कर सकेगा उजाला।
स्वयं जो पहले न ज्ञानी बना...अन्य को क्या देगा ज्ञान भला।। (1)

स्वयं को शांति देना है स्व-प्रेम...संक्लेश दुःखों से होना शून्य।
समता-संतुष्ठी से होना पूर्ण...आशा-निराशा से होना शून्य।।

इस हेतु त्याग करो ईर्ष्या-द्वेष...कभी न दो स्वयं को संताप।
दीन-हीन व अहंकार त्याग...विनम्र सत्यग्राही उदार भाव।। (2)

परनिंदा-अपमान-क्षति त्याग...मैत्री-प्रमोद-कारुण्य भाव।
स्व-पर विश्व कल्याण भाव...इससे होगा स्व-प्रति प्रेम भाव।।

अन्य प्रति जो करे क्रूर भाव...स्व-प्रति किया पहले अप्रेम भाव।
क्रूर भाव से स्व को होता संताप...यह ही स्व-प्रति अप्रेम भाव।। (3)

तथाहि क्रोध-मान-माया-लोभ...ईर्ष्या-तृष्णा व राग-द्वेष।
हिंसा झूठ चोरी कुशील भाव...ये सब है स्व-प्रति अप्रेम भाव।।

स्व-प्रेम से ही विश्व प्रेम संभव...स्व-अप्रेम से नहीं परप्रेम संभव।
मोह-आसक्ति नहीं है स्व-प्रेम...पावन अनासक्ति होता है प्रेम।। (4)

दया-दान-सेवा व परोपकार...गुण-गुणी प्रशंसा व गुण आदर।
स्व-पर को प्रोत्साहित करना प्रेम हेतु...ऐसा ही प्रेम चाहे 'कनकनंदी'।। (5)

चितरी, दिनांक 16.11.2017, रात्रि 11.56

स्व-परमात्मा को स्वयं में ही पाऊँ

-आचार्यश्री कनकनंदी

(चाल : क्या मिलिये ऐसे लोगों से....., भातुकली.....)

तेरा परमेश्वर तुझमें स्थित...कहा ढूँढ़ रहे हो तुम मूर्ख।
तुझको तू ही पावन करो...तुझमें प्रकट होंगे तेरे नाथ।।

बीज में यथा वृक्ष समाहित है...तिल में तैल तथा दूध में घृत।
स्कंध में यथा अणु समाहित...तथाहि तुझमें तेरा भगवंत।। (1)

घने मेघ से यथा सूर्य तिरोहित है...तथाहि तुझमें तेरा नाथ।
कर्म बादल को तू निवारण कर...तुझमें ही प्रगट होंगे तेरे नाथ।।

जो वस्तु जहाँ छिपी हुई है...वहाँ ही खोजने से वह मिलेगी।
अन्यत्र खोजने से वह न मिलेगी...तथाहि जानो तेरी प्राप्ति होगी।। (2)

मृदा जल वायु के संयोग पाकर...यथा बीज बन जाता है वृक्ष।
सुद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव प्राप्त कर...तथाहि तू बन जायेगा सिद्ध।।

घानी से पिलने से तेल मिलता है...घी निकालने की क्रिया से (दूध से) घृत।
स्कंध के भेद से होता अणु प्रगट...आत्मशुद्धि से होगा (तेरा) प्रभु प्रगट।। (3)

इस हेतु तुझे ही करना होगा...स्व-आत्मा की परिशुद्धि।
राग-द्वेष-मोह को दूर करने से...आत्मा की होगी संपूर्ण विशुद्धि।।

इस प्रक्रिया से बना सिंह महावीर...हाथी भी बना है प्रभु पार्श्वनाथ।
अनंतानंत जीव बन गये भगवान्...अंतरंग-बहिरंग निमित्त पाकर।। (4)

इस हेतु तू भी करो हे! पुरुषार्थ...राग-द्वेष-मोह क्षय हेतु।
समता-शांति व निस्पृहता द्वारा...आत्मविशुद्धि करो कर्म क्षय हेतु।।

इस हेतु करो आत्मविश्वास दृढ़...भेद-विज्ञान युक्त ध्यान-अध्ययन।
संकल्प-विकल्प व संक्लेश त्यागो...ख्याति-पूजा-लाभ से हो शून्य।। (5)

सरल-सहजता मृदुता धारो...क्षमा-सहिष्णुता-धैर्य-संयम।
शोध-बोधपूर्ण आत्मानुभव करो...आत्म स्वभाव में होकर लवलीन।।

परनिंदा-अपमान-वैरत्व छोड़ो...सभी जीव में करो आत्मदर्शन।
अहंकार-ममकार संपूर्ण छोड़ो...'कनक' तू बन जायेगा स्व-भगवान्।। (6)

चितरी, दिनांक 17.11.2017, प्रातः 07.07

स्व-उपासना/(पूजा) हेतु करूँ सभी उपासना/(पूजा)

-आ. कनकनंदी

(चाल : मन रे! तू....., सायोनारा.....)

कनक ! तू स्व-उपासना करऽऽऽ
स्व-उपासना हेतु करो अन्य (सभी)उपासनाऽऽऽ
अन्य कुछ कामना न करऽऽ...(ध्रुव)...

अरिहंत-सिद्ध सम बनना है तुझे..उनके सम बनो तू पावनऽऽऽ
इस हेतु राग-द्वेष-मोह को त्यागो..इस हेतु ही तू कर उपासनाऽऽऽ
वंदे तद्गुणलब्धये (हेतु) उपासनाऽऽऽ...कनक...(1)...

ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि हेतु..धन जन मान वर्चस्व हेतुऽऽऽ
ईर्ष्या तृष्णा घृणा विद्वेष हेतु..करो न कुछ भाव व कामऽऽऽ
तभी होगी सही स्व-उपासनाऽऽऽ...कनक...(2)...

आत्मश्रद्धान ज्ञान चारित्र द्वारा..सहज सरलता समता द्वाराऽऽऽ
क्षमा मृदुता शौच संयम द्वारा..स्व-उपासना करो स्वाध्याय द्वाराऽऽऽ
इससे परे न होगी तेरी उपासनाऽऽऽ...कनक...(3)...

स्व-शोध-बोध व ध्यान द्वारा..आत्मानुशासन-आत्मसुधार द्वाराऽऽऽ
आत्मविशुद्धि आत्म प्रतीती द्वारा..स्व-उपासना करो आत्मस्थिरता द्वाराऽऽऽ
स्व-अनुभव ही तेरी सही उपासनाऽऽऽ...कनक...(4)...

इस हेतु ही व्रत नियम पालो..स्व-उपासना भिन्न कुछ न करोऽऽऽ
संकल्प-विकल्प-संक्लेश त्यागो..आकर्षण विकर्षण द्वंद्व त्यागोऽऽऽ
'कनक' स्व-शुद्धात्मा को तू पाओऽऽऽ...कनक...(5)...

चितरी, दिनांक 16.11.2017, मध्याह्न 3.07

संदर्भ-

जैसा भावै सो तैसा हो जावै। अविनाशी अनंत अतीद्रिंय सुख का निरंतर लाभ आत्मा की शुद्ध अवस्था में होता है। उस अवस्था की प्राप्ति का उपाय यद्यपि साक्षात् शुद्धोपयोग में तन्मय होकर निर्विकल्प समाधि में वर्तन करना है। तथापि परंपरा से उसका उपाय अरहंत और सिद्ध आदि परमेष्ठी उनको नमस्कार करना, पूजन करना, स्तुति करना आदि है।

जो अरिहंत के माध्यम से स्वयं को जानता है उसका मोह नाश होता है

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।

सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं।। (80) प्र.सार.

He, who knows the Arihanta with respect to substantiality, quality, and modification, realizes himself, and his delusion, in fact, dwindles into destruction.

आगे ''चत्तापावारम्भ'' इत्यादि सूत्र से जो कहा जा चुका है कि शुद्धोपयोग के बिना मोह आदि का नाश नहीं होता है और मोहादि के नाश के बिना शुद्धात्मा का लाभ नहीं होता है, उस ही शुद्धात्मा के लाभ के लिए अब उपाय बताते हैं।

(जो) जो कोई (अरहंत) अरहंत भगवान् को (दव्वत्तगुणत्तपज्जत्तेहिं) द्रव्यपने, गुणपने तथा पर्यायपने से (जाणदि) जानता है (सो) वह पुरुष (अप्पाणं जाणदि) अर्हंत के ज्ञान के पीछे अपने आत्मा को जानता है। उस आत्मा ज्ञान के प्रताप से (तस्समोहा) उस पुरुष का दर्शन मोह (खलु लयं जादि) निश्चय क्षय हो जाता है।

इसका विस्तार यह है कि अर्हंत आत्मा के केवल ज्ञान आदि विशेष गुण हैं। अस्तित्व आदि सामान्य गुण हैं परम औदारिक शरीर के आकार जो आत्मा के प्रदेशों का होना सो व्यंजन पर्याय है। अगुरुलघु गुण द्वारा षट् प्रकार वृद्धि हानि से वर्तन करने वाली अर्थ पर्याय है। इस तरह लक्षणधारी गुण और पर्यायों के आधार रूप, अमूर्तिक, असंख्यात प्रदेशी, शुद्ध चैतन्यमई अन्वयरूप अर्थात् नित्यस्वरूप अरहंत द्रव्य है। इस तरह द्रव्य गुण पर्याय स्वरूप अरहंत परमात्मा को पहले जानकर फिर

निश्चयनय से उसी द्रव्यगुण पर्याय को आगम का सारभूत जो आध्यात्मिक भाषा है उसके द्वारा शुद्ध आत्मा की भावना के सम्मुख होकर अर्थात् विकल्प सहित स्वसंवेदन ज्ञान में परिणमन करते हुए तैसे ही आगम की भाषा से अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण नाम के परिणाम विशेषों के बल से जो विशेष भाव दर्शन मोह के अभाव करने में समर्थ है, अपने आत्मा से जोड़ता है। उसके बाद निर्विकल्प स्वरूप की प्राप्ति के लिए जैसे पर्याय रूप से मोती के दाने, गुण रूप से सफेदी आदि अभेद नय से एक हार रूप ही मालूम होते हैं तैसे ही पूर्व में कहे हुए द्रव्यगुण पर्याय अभेद-नय से आत्मा ही है, इस तरह भावना करते-करते दर्शन मोह का अंधकार नष्ट हो जाता है।

जो वास्तव में अरहंत को द्रव्य रूप से गुण रूप से और पर्याय रूप से जानता है वह वास्तव में अपने आत्मा को जानता है क्योंकि दोनों (अरहंत और अपनी आत्मा) में निश्चय से अंतर नहीं है। अरहंत का रूप भी अंतिम ताप को प्राप्त सोने के स्वरूप की भाँति परिस्पष्ट (शुद्ध) आत्मा का रूप ही है, इस कारण से उनका (अरहंत का) ज्ञान होने पर सर्व आत्मा का ज्ञान होता है। वहाँ (अरहंत में) अन्वय रूप द्रव्य है, अन्वय का विशेषण गुण है, और अन्वय के व्यतिरेक (भिन्न-भिन्न, क्रम से होने वाली) पर्यायें हैं। वहाँ सर्वतः विशुद्ध भगवान् अरहंत में (जीव) तीनों प्रकार युक्त समय को भी (द्रव्य गुण पर्याय मय निज आत्मा को भी) अपने मन से देख लेता है। जो यह चेतन है, यह अन्वय है, वह द्रव्य है, जो अन्वय के आश्रय रहने वाला चैतन्य है, यह विशेषण है, वह गुण है, और जो एक समय मात्र मर्यादित काल परिमाण के कारण से परस्पर भिन्न-भिन्न अन्वय के व्यतिरेक हैं वे पर्यायें हैं-जो कि चिद्विवर्तन की (आत्मा के परिणमन की) ग्रंथियाँ (गाँठे) हैं। इस प्रकार अरहंत के द्रव्य गुण पर्याय का स्वरूप है।

अब (1) इस प्रकार त्रैकालिक को भी (त्तिकाल इसी स्वभाव को धारण करने वाली अपनी आत्मा को भी) एक काल में समझ लेने वाले, (2) झूलते हुए हार में मोतियों की तरह (जैसे मोतियों को झूलते हुए हार में अंतर्गत माना जाता है उसी प्रकार चिद्विवर्तन को (चैतन्य पर्यायों को) चेतन में ही अंतर्गत करके तथा विशेषण विशेष्यता की वासना का अंतर्धान होने से, हार में सफेदी की तरह (जैसे

सफेदी को हार में अंतर्हित किया जाता है, उसी प्रकार) चैतन्य को चेतन में ही अंतर्हित करके केवल हार की तरह (जैसे मोती व सफेदी आदि के विकल्प को छोड़कर मात्र हार को जानता है, उसी प्रकार) केवल आत्मा को जानने वाले, (3) उसके उत्तर क्षण में कर्त्ता-कर्म-क्रिया का विभाग नाश को प्राप्त हो जाने से निष्क्रिय चिन्मात्र भाव को प्राप्त होने वाले, (4) उत्तम मणि की भाँति अकम्म रूप से प्रवर्त रहा है निर्मल प्रकाश जिसका, ऐसे उस जीव के अवश्य ही निराश्रयता के कारण से मोहांधकार नष्ट हो जाता है। यदि ऐसा है तो मेरे द्वारा मोह की सेना को जीतने के लिए उपाय प्राप्त कर लिया गया।

समीक्षा-जीव एक द्रव्य है। जीव द्रव्य होने के कारण उसमें गुण भी है और पर्याय भी है। शुद्ध जीव का स्वरूप एक समान होते हुए भी संसारी जीव की अवस्थाएँ कर्म सापेक्ष होने से विभिन्न प्रकार की हैं। गुणस्थान की अपेक्षा मध्यम प्रतिपत्ति से इसके 14 भेद हैं। संक्षिप्त रूप से अन्य प्रकार से देखने पर इसके 3 भेद भी हैं। यथा-

बहिरन्तः परश्चेति त्रिधात्मा सर्वदेहिषु।
उपेयात्तत्र परमं मध्योपायाद् बहिस्त्यजेत्।। (14) समाधि, त.पृ. 9

सर्व प्राणियों में बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा इस तरह तीन प्रकार है। परमात्मा के उन तीन भेदों में से अन्तरात्मा के उपाय द्वारा परमात्मा को अंगीकार करे-अपनावे और बहिरात्मा को छोड़े।

बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर आतम हूजै।
परमातम को ध्यान निरन्तर, ज्यो नित आनंद पूजै।। (छहढाला)

अरिहंत भगवान् भी एक चैतन्य द्रव्य है उनके अनंत ज्ञानादि अनंत गुण हैं एवं 13वें गुणस्थानवर्ती शुद्धावस्था रूप पर्याय भी है। जो व्यक्ति अरिहंत भगवान् को द्रव्यदृष्टि, गुणदृष्टि एवं पर्यायदृष्टि से अवलोकन करते हुए स्वयं को स्वरूप का अवलोकन करता है वह स्वस्वरूप को भी जान लेता है। इसीलिए आचार्य स्वामी पूज्यपाद ने कहा है-

'श्री मुखालोकन देव श्री मुखावलोकनं भवेत्'

अर्थात् जो भगवान् के श्री मुख का दर्शन करता है वह श्री अर्थात् मोक्ष लक्ष्मी

का दर्शन करता है। इसीलिए जिन दर्शन निज दर्शन है।

भक्त जब भगवान् के पास जाता है तब वह भगवान् के स्वरूप रूपी दर्पण से अपने स्वरूप का दर्शन करता है। जब वह दिव्य दृष्टि से स्वयं को एवं भगवान् को देखता है तब दोनों में कोई अंतर दृष्टिगोचर नहीं होता है क्योंकि पूज्य भी जीव द्रव्य है तथा पूजक भी जीव द्रव्य है। गुण दृष्टि से भी कोई विशेष अंतर परिलक्षित नहीं होता है किन्तु जब पर्याय दृष्टि से अवलोकन करता है तब दोनों में महान् अन्तर परिलक्षित होता है क्योंकि भगवान् पर्याय दृष्टि से अनंत ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य के अक्षय भण्डार हैं एवं पूजक स्वयं अनंत अज्ञान, दुःखादि को भोगने वाला है। अंग्रेजी में एक नीति वाक्य है-

There is no difference between God and us.
But there is so difference between God and us.

अर्थात् दिव्य दृष्टि से भगवान् और हमारे में कोई अंतर नहीं है किन्तु अवस्था दृष्टि (पर्याय दृष्टि) से भगवान् और हमारे में महान् अंतर है। भक्त भगवान् के पास एक अलौकिक उपादेय प्रशस्त स्वार्थ को लेकर जाता है। उसका स्वार्थ यह है कि मेरा स्वरूप भगवान् स्वरूप होते हुए भी मैं अभी दीन-हीन भिखारी के समान हूँ। मैं भगवान् के पास से उनसे वहीं शिक्षा प्राप्त करूँ जिस मार्ग पर चलते हुए भगवान् ने इस परमोत्कृष्ट नित्यानंद अवस्था को प्राप्त किया है। इसीलिए भक्त की आद्यन्त भावना एवं परिणति निम्न प्रकार की होती है-

दासोऽहं रटता प्रभो! आया जब तुम पास।
''द'' दर्शत हट गयो, सोऽहं रहो प्रकाश।।
सोऽहं सोऽहं ध्यावतो रह न सको सकार।
दीप ''अहं'' मय हो गयो अविनाशी अविकार।।

जब भक्त भगवान् के पास आता है तब वह स्वयं को दास (पूजक) एवं भगवान् को प्रभु (पूज्य) मानता है। जब भगवान् का दर्शन करके भगवान् का स्वरूप एवं स्वस्वरूप का तुलनात्मक विश्लेषण करता है तदनन्तर जब वह पूज्य के गुणों को अनुकरण करके आध्यात्मिक साधना करता है तो उस साधना के फलस्वरूप निर्विकल्प अवस्था को प्राप्त करता है तब सोऽहं रूप विकल्प भी विलय हो जाता है।

तब अहं रूप अविनाशी, अविकार स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। यही पूजा का परमोत्कृष्ट फल है। आचार्य प्रवर उमास्वामी ने कहा है-**'वंदे तद्गुण लब्धये'** अर्थात् मैं वीतराग, सर्वज्ञ, हितोपदेशी भगवान् को उनके गुणों की प्राप्ति के लिए वंदना करता हूँ।

वीरसेन स्वामी ने कहा है कि जो अरहंत की प्रतिमा के भी दर्शन करता है उसका मोहनीय कर्म क्षय होता है जिससे जिनबिंब दर्शन से सम्यग्दर्शन की उपलब्धि कहा है। जैसे-अंकुर की मूल पर्याय बीज है और भविष्यत् पर्याय वृक्ष है। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि की भूत पर्याय मिथ्यात्वावस्था है और भविष्यत् पर्याय भगवान् अवस्था है। भव्यभावी भगवान् है तो भगवान् भूत भव्य है जैसे-बालक भावी प्रौढ़ मानव है और प्रौढ़ मानव भूत बालक है। इसलिये जो आत्मा है वही परमात्मा है। समाधितंत्र में पूज्यपाद स्वामी ने कहा भी है-

यः परात्मा स एवाहं योऽहं स परमस्ततः।
अहमेव मयोपास्यो नान्यः कश्चिदिति स्थितिः।। (31) पृ.49

अन्तरात्मा विचारता है कि जो परमशुद्ध परमात्मा है वह ही मैं हूँ तथा जो मैं हूँ वह परमात्मा है, इस कारण मेरे द्वारा मुझसे मैं ही उपासना ध्यान करने योग्य हूँ, कोई अन्य पदार्थ उपासना करने योग्य नहीं है ऐसी परिस्थिति व्यवस्था है।

भिन्नात्मानमुपास्यात्मा परो भवति तादृशः।
वर्त्तिर्दीपं यथोपास्य भिन्ना भवति तादृशी।। (97)

अपने आत्मा से भिन्न अरहंत, सिद्ध भगवान् की उपासना आराधना करके आत्मा उनके समान परमात्मा बन जाता है। जैसे-दीपक से भिन्न बत्ती की उपासना करके यानी साथ रहकर दीपक के समान प्रकाशमान बन जाती है।

उपास्यात्मानमेवात्मा जायते परमोऽथवा।
मथित्वात्मानमात्मैव जायतेऽग्निर्यथा तरूः।। (98)

अथवा अपना आत्मा अपने आत्म स्वरूप को ही आराधना-चिन्तवन करके परमात्मा हो जाता है जैसे अपने आप को ही रगड़कर बाँस का पेड़ स्वयं ही अग्नि हो जाता है।

जेहउ णिम्मलु णाणमउ सिद्धिहिं णिवसइ देउ।
तेहउ णिवसइ बंभु परू देहहँ मं करि भेउ।। (26) प.प्र.पृ.30 अ.1

जैसा केवलज्ञानादि प्रगट स्वरूप कार्य समयसार उपाधि रहित भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म रूप मल से रहित केवल ज्ञानादि अनंत गुणरूप सिद्धपरमेष्ठी देवाधिदेव परम आराध्य मुक्ति में रहता है, वैसा ही सब लक्षणों सहित परब्रह्म, शुद्ध, बुद्ध, स्वभाव परमात्मा, उत्कृष्ट शुद्ध द्रव्यार्थिक नयकर शक्तिरूप परमात्मा शरीर में तिष्ठता है, इसलिए हे प्रभाकर भट्ट, तू सिद्ध भगवान् में और अपने में भेद मत कर।

जें दिट्ठें तुट्टंति लहु कम्मइँ पुव्व कियाइँ।

सो परू जाणाहि जोइया देहि वसंतु ण काइँ।। (27)

जिस आत्मा को सदा आनंद रूप वीतराग निर्विकल्प समाधि स्वरूप निर्मल नेत्रों कर देखने से शीघ्र ही निर्वाण को रोकने वाले पूर्व जीवोपार्जित कर्म चूर्ण हो जाते हैं अर्थात् सम्यग्ज्ञान के अभाव से जो पहले शुभ-अशुभ कर्म कमाये थे वे निजस्वरूप के देखने से ही नाश हो जाते हैं, उस सदानन्दरूप परमात्मा को देह में बसते हुए भी हे योगी! तू क्यों नहीं जानता।

देहादेवलि जो वसइ देउ अणाइ-अणंतु।

केवल-णाण-फुरंत-तणु लो परमप्पु णिभंतु।। (33)

जो व्यवहारनयकर देहरूपी देवालय में बसता है, निश्चयनयकर देह से भिन्न है, देह की तरह मूर्तिक तथा अशुचिमय नहीं है, महापवित्र है, आराधने योग्य है, पूज्य है, देह आराधने योग्य नहीं है, जो परमात्मा आप शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर अनादि अनंत है, तथा देह आदि अंतकर सहित है, जो आत्मा निश्चयनयकर लोक-अलोक को प्रकाशने वाले केवलज्ञान स्वरूप है, अर्थात् केवलज्ञान ही प्रकाशरूप शरीर है और देह जड़ है, वही परमात्मा निःसंदेह है, इसमें कुछ संशय नहीं समझना।

बुज्झंतहँ परमत्थु जिय गुरु लहु अत्थि ण कोई।

जीवा सयल वि बंभु परू जेण वियाणइ सोइ।। (94) अ.2 पृ.213

हे जीव, परमार्थ को समझने वालों के कोई जीव बड़ा छोटा नहीं है, सभी जीव परमब्रह्म स्वरूप है, क्योंकि निश्चयनय से वह सम्यग्दृष्टि एक भी जीव सबको जानता है।

जो भत्तउ-रयण-त्तयह तसु मुणि लक्खणु एउ।

अच्छउ कहिँ वि कुडिल्लियइ सो तसु करइ ण भेउ।। (95)

जो मुनि रत्नत्रय की आराधना करने वाला है, उसके यह लक्षण जानना कि किसी शरीर में जीव रहे, वह ज्ञानी उस जीव का भेद नहीं करता अर्थात् देह के भेद से गुरुता लघुता का भेद करता है, परन्तु ज्ञान दृष्टि से सबको समान देखता है।

जीवहँ तिहुयण संठियहँ मूढा भेउ करंति।

केवल-णाणिं णाणि फुडु सयलु वि एक्कु मुणंति।। (96)

तीन भुवन में रहने वाले जीवों का मूर्ख ही भेद करते हैं, और ज्ञानी जीव केवलज्ञान से प्रकट सब जीवों को समान जानते हैं।

जीवा सयल वि णाण-मय जम्मण-मरण विमुक्क।

जीव-पएसहिँ सयल सम सयल वि सगुणहिँ एक्क।। (97)

सभी जीव ज्ञानमयी है, और अपने-अपने प्रदेशों से सब समान हैं, सब जीव अपने केवल ज्ञानादि गुणों से समान हैं।

जीवहँ लक्खणु जिणवरहि भासिउ दंसण-णाणु।

तेण ण किज्जइ भेउ तहँ जइ मणि जाउ विहाणु।। (98)

जीवों का लक्षण जिनेन्द्र देव ने दर्शन और ज्ञान कहा है, इसीलिए उन जीवों में भेद मत कर, अगर तेरे मन में ज्ञानरूपी सूर्य का उदय हो गया है, अर्थात् हे शिष्य! तू सबको समान जान।

बंभहँ भुवणि बसंताहँ जे णवि भेउ करंति।

ते परमप्प-पयासयर जोइय विमलु मुणंति।। (99)

इस लोक में रहने जीवों का भेद नहीं करते हैं, वे परमात्मा के प्रकाश करने वाले योगी, अपने निर्मल आत्मा को जानते हैं।

देह-विभेयहँ जो कुणइ जीवइँ भेउ विचित्तु।

सो णवि लक्खणु मुणइ तहँ दंसणु णाणु चरित्तु।। (102)

जो शरीरों के भेद से जीवों का नाना रूप भेद करता है, वह उन जीवों का दर्शन ज्ञान चरित्र लक्षण नहीं जानता, अर्थात् उसको गुणों की परीक्षा पहचान नहीं है।

जेण सरूविं झाइयइ अप्पा एहु अणंतु।

तेण सरूविं परिणवइ जह-फलिहउ-मणि मंतु।। (173)

यह प्रत्यक्ष रूप अविनाशी आत्मा जिस स्वरूप से ध्याता जाता है, उसी

स्वरूप परिणमता है, जैसे एक स्फटिक मणि और गरूड़ी मंत्र है।

एहु जु अप्पा सो परमप्पा कम्म-विसेसैं जायउ जप्पा।

जामइँ जाणइ अप्पैं अप्पा तामइँ सो जि देउ परमप्पा।। (174)

यह प्रत्यक्षीभूत स्वसंवेदन ज्ञान कर प्रत्यक्ष जो आत्मा वही शुद्ध निश्चयनयकर अनंत चतुष्टय स्वरूप क्षुधादि अठारह दोष रहित निर्दोष परमात्मा है, वह व्यवहारनयकर अनादि कर्मबंध के विशेष से पराधीन हुआ दूसरे का जाप करता है, परन्तु जिस समय वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान कर अपने को जानता है, उस समय यह आत्मा ही परमात्मा देव है।

जो परमप्पा णाणमउ सो हउँ देउ अणंतु।

जो हउँ सो परमप्पु परु एहउ भावि णिभंतु।। (175)

जो परमात्मा ज्ञानस्वरूप है, वह मैं ही हूँ, जो कि अविनाशी देवस्वरूप हूँ जो मैं हूँ वही उत्कृष्ट परमात्मा है। निस्संदेह तू भावना कर।

जो जिणु सो अप्पा मुणहु इहु सिद्धंतहँ सारू।

इउ जाणेविण जोइयहो छंडहु मायाचारू।। (21) पृ.363 योगसार

जो जिन भगवान् है वही आत्मा है-यहीं सिद्धांत का सार समझो, इसे समझकर, हे योगीजनों! मायाचार को छोड़ो।

जो परमप्पा सो जि हउँ जो हउँ सो परमप्पु।

इउ जाणेविणु जोइया अण्णु म करहु वियप्पु।। (22)

जो परमात्मा है वही मैं हूँ तथा जो मैं हूँ वही परमात्मा है, यह समझकर, हे योगिन्! अन्य कुछ भी विकल्प मत करो।

जो तइलोयहँ झेउ जिणु सो अप्पा णिरू वुत्तु।

णिच्छय-णइँ एमइ भणिउ एहउ जाणि विभंतु।। (28)

जो तीन लोकों के ध्येय भगवान् हैं, निश्चय से उन्हें ही आत्मा कहा है-यह कथन निश्चयनय से है। इसमें भ्रांति न करनी चाहिए।

जं वडमज्झहँ बीउ फुडु बीयहं वडु वि हु जाणु।

तं देहहँ देउ वि मुणहि, जो तइलोय पहाणु।। (74)

जैसे बड़ के वृक्ष में बीज स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, वैसे ही बीज में भी बड़ वृक्ष

रहता है। इसी तरह देह में भी उस देव को विराजमान समझो, जो तीनों लोकों में मुख्य है।

जो जिण सो हउँ सो जि हउँ एहए भाउ णिभंतु।

मोक्खहँ कारण जोइया अण्णु ण तंतु ण मंतु।। (75)

जो जिनदेव है वह मैं हूँ-इसकी भ्रांति रहित होकर भावना कर। हे योगिन्! मोक्ष का कारण कोई अन्य मंत्र-तंत्र नहीं है।

यत्रैवाहितधीः पुंसः श्रद्धा तत्रैव जायते।

यत्रैव जायते श्रद्धा चित्तं तत्रेव लीयते।। (95) समाधितंत्र

भावार्थ-जिस विषय में किसी मनुष्य की बुद्धि संलग्न होती है-खूब सावधान रहती है-उसी में आसक्ति बढ़कर उसकी श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है और जहाँ श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है वही चित्त लीन रहता है चित्त की लीनता ही सुप्त और उन्मत्त-जैसी अवस्थाओं में मनुष्य को उस विषय की ओर से हटने नहीं देती-सोते में भी वह उसी के स्वप्न देखता है और पागल होकर भी उसी की बातें किया करता हैं।

यत्रानाहितधीः पुंसः श्रद्धा तस्मान्निवर्तते।

यस्मान्निवर्तते श्रद्धा कुतश्चितस्य तल्लयः।। (96)

भावार्थ-जिस विषय में किसी मनुष्य की बुद्धि संलग्न नहीं होती भले प्रकार सावधान नहीं रहती-उसमें अनासक्ति बढ़कर श्रद्धा उठ जाती है और जहाँ से श्रद्धा उठ जाती है वहाँ चित्त की लीनता नहीं हो सकती। अतः किसी विषय में आसक्ति न होने का रहस्य बुद्धि को उस विषय की ओर अधिक न लगाना ही है-बुद्धि का जितना कम व्यापार उस तरफ किया जायेगा और उसे अहितकारी समझकर जितना कम योग दिया जायेगा उतना ही उस विषय से अनासक्ति होती जायेगी और फिर सुप्त तथा उन्मत्त अवस्था हो जाने पर भी उस और चित्त की वृत्ति नहीं जायेगी।

इतीदं भावयेन्नित्यमवाचांगोचरं पद्म।

स्वत एव तदाप्नोति यतो नावर्तते पुनः।। (99)

भावार्थ-आत्मस्वरूप की प्राप्ति के लिए आत्मस्वरूप के पूर्ण विकास को प्राप्त हुए अर्हंत और सिद्ध परमात्मा का हमें निरंतर ध्यान करना चाहिए-तद्रूप होने की भावना में रत रहना चाहिए-अथवा अपने आत्मा को आत्मस्वरूप में स्थिर करने

का दृढ़ अभ्यास करना चाहिए। ऐसा होने पर ही उस वचन-अगोचर अतीन्द्रिय परमात्म पद की प्राप्ति हो सकेगा, जिसे प्राप्त करके फिर इस जीव को दूसरा जन्म लेकर संसार में भटकना नहीं पड़ता-वह सदा के लिए अपने ज्ञानानंद में मग्न रहता है और सब प्रकार के दुःखों से छूट जाता है।

धर्म-दर्शन-विज्ञान संबंधी शोधपूर्ण कविता...

सत्य! तेरा अनंत रूप

(सत्य बिना कुछ भी असंभव)

(चाल : बस्ती-बस्ती पर्वत-पर्वत....., आत्मशक्ति.....)

सत्य! तेरा अनंत रूप सर्वत्र ही व्याप्त होयऽऽऽ...(2)
तेरे बिना न कुछ ही संभव शुद्ध या अशुद्ध होय...(2)...(ध्रुव)...

सूक्ष्म-स्थूल या मूर्तिक-अमूर्तिक तेरा ही स्वरूप होयऽऽऽ
चैतन्य-अचैतन्य मौलिक-यौगिक तेरा ही स्वरूप होय...

प्राचीन-अर्वाचीन भूत-भविष्य-वर्तमान भी तेरा रूपऽऽऽ
सद्भाव-प्राग्भाव तथाहि प्रध्वंसाभाव भी तेरा ही रूप...(1)

द्रव्य-गुण-पर्याय व उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य भी तेरा रूपऽऽऽ
अस्तित्व-वस्तुत्व-प्रमेयत्व-अगुरुलघुत्व भी तेरा स्वरूप...

आस्रव-बंध-संवर-निर्जरा-पुण्य-पाप व मोक्षऽऽऽ
जीव-पुद्गल-धर्म-अधर्म-आकाश-काल भी तेरा रूप...(2)

अणु-स्कंध व तेईस वर्गणाएँ व गलन-पुरण भी तेरा रूपऽऽऽ
स्पर्श-रस-गंध-वर्ण व पृथ्वी-जल-वायु-अग्नि तेरा ही रूप...

चौरासी लाख योनी व चतुर्गति रूपी संसार तेरा ही अशुद्ध रूपऽऽऽ
शुद्ध-बुद्ध व आनंद स्वरूप जीव तेरा ही शुद्ध स्वरूप...(3)

तू सनातन-अनादि-अनंत शुद्ध रूप से स्वयंभू स्वतंत्रऽऽऽ
अकार्य कारण अनंत गुणमय उत्पाद-व्यय-धौव्य संयुक्त...

अशुद्ध तेरा रूप दृश्यमान कुछ है अदृश्य संपूर्ण शुद्ध रूपऽऽऽ

सूक्ष्म निगोदिया से लेकर मानव तक व पुद्गल स्कंध अशुद्ध रूप...(4)

शुद्ध परमाणु व धर्म-अधर्म-आकाश-काल तेरा शुद्ध रूपऽऽऽ

अष्टकर्म रिक्त अनंत गुण युक्त अमूर्तिक जीव है शुद्ध रूप...

ऐसा ही तेरा व्यापक रूप निगोदिया से ले सिद्ध तकऽऽऽ

आस्रव से लेकर निर्जरा तक तेरा है अशुद्ध स्वरूप...(5)

अशुद्ध दशा में जीव जन्म-मरण करते भोगते हैं सुख-दुःखऽऽऽ

शुद्ध दशा में जीव जन्म-मरण परे हो भोगते अनंत सुखऽऽऽ

तेरे बिना कुछ भी न संभव कभी भी किसके द्वारा भीऽऽऽ

देव-मानव-दानव-वैज्ञानिक जादूगर से सिद्ध भगवान् से भी...(6)

अनहोनी न कभी ही होता असंभव भी न होता कभी संभवऽऽऽ

जो कुछ होता है तेरा ही विचित्र रूप तेरे बिना/(सत्य बिना) कुछ न संभव...

दार्शनिक से ले वैज्ञानिक तक तथाहि सर्वज्ञ द्वारा जो ज्ञातऽऽऽ

वे सभी तेरा ही स्वरूप शुद्ध-अशुद्ध, पूर्ण-अपूर्ण रूप से ज्ञात...(7)

विज्ञान द्वारा अभी तक ज्ञात परमाणु से लेकर विश्व तकऽऽऽ

डार्क मेटर व डार्क एनर्जी से लेकर शोधरत अनेक विश्व तक...

आगे भी जो शोध करेंगे वे भी होगा तेरा ही स्वरूपऽऽऽ

किन्तु भौतिक वैज्ञानिक द्वारा कभी न ज्ञात होगा तव शुद्ध/(परम) स्वरूप...(8)

तुझे पूर्ण जानने हेतु बनना होगा मानव को अनंत ज्ञानीऽऽऽ

अनंत ज्ञानी बनने हेतु बनना होगा स्व-शुद्धात्मा पूर्ण ज्ञानी...

इस हेतु आत्म साधना द्वारा जीव/(मानव) को बनना होगा शुद्ध-बुद्धऽऽऽ

तुझे पूर्ण जानने हेतु 'कनक सूरी' आत्म साधना में रत...(9)

चितरी, दिनांक 03.11.2017, रात्रि 9.12

संदर्भ-

अनंत गुण-धर्मात्मक पदार्थ

विश्व में जितने द्रव्य पाये जाते हैं उनमें केवल 1, 2 संख्यात, असंख्यात धर्म

नहीं रहते हैं, अपितु उनमें अनंत धर्म रहते हैं। द्रव्य अनंत धर्म, अनंत गुण, अनंत पर्यायायों का पिण्ड स्वरूप है। उपरोक्त धर्मादि को छोड़कर किसी भी द्रव्य का अस्तित्व भी नहीं रह सकता है जैसा कि आचार्य ने कहा है-

अनन्तधर्मात्मकमेव तत्त्वमतोऽन्यथा सत्त्वमसूपपादम्।
इति प्रमाणान्यपि ते कुवादि कुरंगसंत्रासनसिंहनादाः।। (22) स्यां.मं.

प्रत्येक पदार्थ में अनंत धर्म मौजूद हैं। पदार्थों में अनंत धर्म माने बिना, वस्तु की सिद्धि नहीं होती अतएव आपके प्रमाण कुवादी रूप मृगों को डराने के लिए सिंह की गर्जना के समान है। वस्तु में यदि अनंत धर्म नहीं होंगे तब वस्तु का अस्तित्व ही नहीं होगा।

जं वत्थुं अणेयतं तं चि य कज्ज करेदि णियमेण।
बहुधम्मजुदं अत्थं कज्जकर दीसदे लोए।।

जो वस्तु अनेकांतात्मक अर्थात् अनेक धर्म वाली है उसी के नियम से अर्थ क्रिया-कारित्व रूप कार्य नहीं दिखाई देता है, किन्तु एकांत धर्म युक्त द्रव्यों का संसार में अर्थ क्रिया कारित्व रूप कार्य नहीं दिखाई देता है। जो अर्थ क्रिया-कारित्व रूप कार्य नहीं करता है वह द्रव्य कैसे हो सकता है? इसीलिए प्रत्येक द्रव्य को अनेकांतात्मक अर्थात् अनंत धर्मात्मक होना चाहिए।

द्रव्य का लक्षण

सद्द्रव्य लक्षणम् ।। (29)

The differention of a Substance or Reality is sat, isness or being. (स्वतंत्रता के सूत्र पृ. 320)

द्रव्य का लक्षण सत् है।

यह विश्व शाश्वतिक है। क्योंकि इस विश्व में स्थित समस्त द्रव्य भी शाश्वतिक है। आधुनिक विश्व में भी सिद्ध हो गया है कि शक्ति या मात्रा कभी भी नष्ट नहीं होती है, परन्तु परिवर्तन होकर अन्य रूप हो जाती है। विज्ञान में कहा भी है-

Matter and energy neither be created nor destroyed. Each can be completely changed into another form or into one another.

विज्ञान के मूलभूत सिद्धान्त हैं कि किसी नई वस्तु की सृष्टि नहीं होती है एवं

कोई वस्तु सम्पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होती। केवल उसके आकार और पर्याय में परिवर्तन होता है।

दवियदि गच्छति ताइं ताइं सब्भाव पज्जयाइं जं।

दवियं तं भण्णंते अणण्णभूदं तु सत्तादो।। (9) (पंचास्तिकाय)

What flows or maintains its identity through its several qualities and modifications and what is not different from Satta or Substance, that is called Dravya by the all knowing.

उन-उन सद्भाव पर्यायों को जो द्रवित होता है-प्राप्त होता है, उसे द्रव्य कहते हैं-जो कि सत्ता से अनन्यभूत है।

दव्वं सल्लक्खणयं उप्पादव्ययधुवत्तसंजुत्तं।

गुणंपज्जयासयं वा जं तं भण्णंति सव्वण्हू।। (10)

Whatever has substantiality, has the dialectical triad of birth, death and permanence, and is the substratum of qualities and modes is Dravya. So say the all-knowing.

जो सत् लक्षण वाला है, जो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य संयुक्त है अथवा जो गुण पर्यायों को आश्रय-आधार है, उसे सर्वज्ञ भगवान् द्रव्य कहते हैं।

गुणपर्ययवद् द्रव्यम्। (28)

Substance is possessed of attributes and modifications.

द्रव्य, गुण और पर्यायों का एक अखण्ड पिण्ड स्वरूप है। गुण को सामान्य, उत्सर्ग, अन्वय भी कहते हैं पर्याय को विशेष भेद भी कहते है। ऐसे सामान्य और विशेष से सहित द्रव्य होता है। पंचास्तिकाय में कहा भी है-

पज्जयविजुदं दव्वं दव्वविजुत्तं य पज्जया णत्थि।

दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परुविंति।। (12)

पर्यायों से रहित द्रव्य और द्रव्यरहित पर्यायें नहीं होती हैं। दोनों का अनन्य भाव श्रमण प्ररूपित करते हैं।

जिस प्रकार दूध, दही, मक्खन, घी इत्यादि से रहित गोरस नहीं होता उसी प्रकार पर्यायों से रहित द्रव्य नहीं होता, जिस प्रकार गोरस से रहित दूध, दही, मक्खन, घी इत्यादि नहीं होते उसी प्रकार द्रव्य से रहित पर्यायें नहीं होती। इसलिये, यद्यपि द्रव्य

और पर्यायों का आदेशवशात्-विवक्षा वश कथंचित् भेद है तथापि, वे एक अस्तित्व में नियत (दृढ़रूप से स्थित) होने के कारण अन्योन्यवृत्ति नहीं छोड़ती इसलिये वस्तुरूप से उनका अभेद है।

दव्वेण विणा गुणा, गुणेहिं दव्वं विणा ण संभवदि।
अव्वदिरित्तो भावो दव्वगुणाणं हवदि तम्हा।। (13)

द्रव्य के बिना गुण नहीं होते, गुणों के बिना द्रव्य नहीं होता है, इसलिये द्रव्य और गुणों का अव्यतिरिक्त भाव अनन्यभाव है।

जिस प्रकार पुद्गल से पृथक् स्पर्श-रस-गंध-वर्ण नहीं होते उसी प्रकार द्रव्य के बिना गुण नहीं होते, जिस प्रकार स्पर्श-रस-गंध-वर्ण से पृथक् पुद्गल नहीं होता उसी प्रकार गुणों के बिना द्रव्य नहीं होता। इसलिये, यद्यपि द्रव्य और गुणों का आदेशवशात् कथंचित भेद है तथापि, वे एक अव्यतिरिक्तत्व में नियत होने के कारण अन्योन्यवृत्ति नहीं छोड़ते इसलिये वस्तुरूप से उनका भी अभेद है।

द्रव्य के बिना गुण नहीं हो सकते तथा गुणों के बिना द्रव्य नहीं संभव है इसलिये द्रव्य और गुणों का अभिन्न भाव होता है।

जैसे पुद्गल द्रव्य की सत्ता के बिना उसमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण नहीं पाये जा सकते वैसे द्रव्य के बिना गुण नहीं होते हैं तथा जैसे वर्णादि गुणों को छोड़कर पुद्गल द्रव्य नहीं मिलता है वैसे गुणों के बिना द्रव्य नहीं प्राप्त हो सकता है। द्रव्य और गुणों की सत्ता अभिन्न हैं-एक हैं क्योंकि द्रव्य की अपेक्षा वे अभिन्न हैं। द्रव्य और गुणों के प्रदेश अभिन्न हैं-एक हैं क्योंकि क्षेत्र की अपेक्षा एकता है। द्रव्य और गुणों का एक ही काल उत्पाद-व्यय का अविनाभाव है क्योंकि काल की अपेक्षा दोनों एक हैं। द्रव्य और गुण दोनों एक स्वरूप है क्योंकि उनका स्वभाव एक है। अतः द्रव्य और गुणों का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावों की अपेक्षा अभेद है इसलिये द्रव्य और गुण अभिन्न हैं-एक हैं। अथवा दूसरा व्याख्यान करते हैं कि, भाव जो पदार्थ वह द्रव्य और गुणों से अभिन्न हैं अर्थात् द्रव्य गुणरूप ही पदार्थ कहा गया है।

द्रव्यों के दस सामान्य गुण

द्रव्यों के दस सामान्य गुण इस प्रकार है-

(1) अस्तित्व (2) वस्तुत्व (3) द्रव्यत्व (4) प्रमेयत्व (5) अगुरुलघुत्व (6) प्रदेशत्व (7) चेतनत्व (8) अचेतनत्व (9) मूर्तत्व और (10) अमूर्तत्व।

(1) **अस्तित्व गुण**-जिस द्रव्य का जो स्वभाव प्राप्त है उस स्वभाव से च्युत नहीं होना अस्तित्व गुण है।

(2) **वस्तुत्व गुण**-सामान्य विशेषात्मक वस्तु होती है, उस वस्तु का जो भाव है वह वस्तुत्व गुण है।

(3) **द्रव्यत्व गुण**-जो अपने प्रदेश समूह के द्वारा अखण्डता से अपने स्वभाव और विभाव पर्यायों को प्राप्त होता है, होयेगा, हो चुका है वह द्रव्य है। उस द्रव्य का जो भाव है वह द्रव्यत्व गुण है।

(4) **प्रमेयत्व गुण**-जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य किसी न किसी प्रमाण (ज्ञान) का विषय अवश्य होता है उसे प्रमेयत्व गुण कहते है।

(5) **अगुरुलघुत्व गुण**-जो सूक्ष्म है, वचन के अगोचर है, हर समय परिणमनशील है और आगम प्रमाण से जाना जाता है वह अगुरुलघु गुण है अथवा जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य में द्रव्यपना कायम रहता है अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप नहीं होता है, एक गुण दूसरे गुण रूप नहीं होता है और द्रव्य में रहने वाले अनन्तगुण बिखरकर अलग-अलग नहीं हो पाते हैं उस शक्ति को अगुरुलघु गुण कहते हैं।

(6) **प्रदेशत्व गुण**-जिस गुण के निमित्त से द्रव्य, क्षेत्रता को प्राप्त हो वह प्रदेशत्व गुण है अर्थात् जिस गुण के कारण द्रव्य में कुछ न कुछ आकार हो उसे प्रदेशत्व गुण कहते हैं।

(7) **चेतनत्व गुण**-अनुभूति का नाम चेतना है। जिस शक्ति के निमित्त से स्व-पर की अनुभूति अर्थात् प्रतिभासकता होती है अर्थात् जाना जाता है वह चेतना गुण है।

(8) **अचेतनत्व गुण**-जड़पने को अचेतन कहते हैं, अननुभवन सो अचेतनता है। चेतना का अभाव ही अचेतना है। इस गुण के माध्यम से स्व-पर का अनुभव नहीं होता है।

(9) **मूर्तत्व गुण**-रूपादि भाव को अर्थात् स्पर्श, रस, गंध, वर्ण भाव को

मूर्तत्व कहते हैं।

(10) **अमूर्तत्व गुण**-स्पर्श, रस, गंध, वर्ण से रहित भाव अमूर्तत्व है।

ये गुण एक से अधिक द्रव्य में पाये जाते हैं इसलिए सामान्य गुण हैं। जीव द्रव्य अनन्तानन्त होने के कारण तथा एक चेतनत्व सब जीवों में पाये जाने के कारण चेतनत्व गुण सामान्य है। पुद्गल द्रव्य अनन्त होने के कारण एवं सर्व पुद्गलों में मूर्तत्व गुण पाये जाने से मूर्तत्व गुण सामान्य है। जीव के अतिरिक्त अन्य पाँच द्रव्य अचेतन हैं इसलिए अचेतनत्व गुण सामान्य है। पुद्गल को छोड़कर अन्य पाँच द्रव्य अमूर्तिक हैं इसलिए अमूर्तत्व गुण सामान्य है।

उपरोक्त 10 सामान्य गुणों में से प्रत्येक द्रव्य में आठ-आठ गुण पाये जाते हैं और दो-दो नहीं पाये जाते हैं। जैसे जीवद्रव्य में अचेतनत्व और मूर्तत्व ये दो गुण नहीं है। पुद्गल द्रव्य में चेतनत्व और अमूर्तत्व ये दो गुण नहीं हैं। धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य में चेतनत्व, मूर्तत्व ये दो गुण नहीं हैं। जीव में अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, चेतनत्व, अमूर्तत्व ये आठ गुण होते हैं। पुद्गल द्रव्य में अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, अचेतनत्व और मूर्तत्व ये आठ गुण होते हैं। धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्यों में अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व और अचेतनत्व, अमूर्तत्व ये आठ गुण होते हैं।

सोलह विशेष गुण

द्रव्यों के 16 विशेष गुण इस प्रकार हैं-

(1) ज्ञान, (2) दर्शन, (3) सुख, (4) वीर्य, (5) स्पर्श, (6) रस, (7) गन्ध, (8) वर्ण, (9) गति हेतुत्व, (10) स्थिति हेतुत्व, (11) अवगाहन हेतुत्व, (12) वर्तना हेतुत्व, (13) चेतनत्व, (14) अचेतनत्व, (15) मूर्तत्व, (16) अमूर्तत्व।

(1) **ज्ञान**-जिसके द्वारा जीव त्रिकाल विषयक समस्त गुण और उनकी अनेक प्रकार की पर्यायों को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से जाने सो ज्ञान गुण है। बहिर्मुख चित्प्रकाश को ज्ञान कहते हैं। जिस शक्ति के द्वारा आत्मा, पदार्थ को साकार जानता है

उसे ज्ञान कहते हैं। भूतार्थ का प्रकाश करने वाले अथवा सद्भाव का निश्चय करने वाले धर्म को ज्ञान कहते हैं।

(2) **दर्शन**–अन्तर्मुख चित्प्रकाश को दर्शन कहते हैं। जो अवलोकन करता है वह आलोक या आत्मा है तथा वर्तन अर्थात् व्यापार वही वृत्ति है। अवलोकन अर्थात् आत्मा की वृत्ति तो आलोकन वृत्ति या स्वसंवेदन है और वही दर्शन है। प्रकाश ज्ञान है, उस प्रकाश ज्ञान के लिए जो आत्मा का व्यापार सो प्रकाश वृत्ति है और वही दर्शन है। विषय और विषयी के योग्य देश में होने की पूर्वावस्था दर्शन है। सामान्य विशेषात्मक बाह्य पदार्थों को अलग-अलग भेद रूप से ग्रहण नहीं करके जो सामान्य ग्रहण रूप अवभासना होता है उसे दर्शन कहते हैं।

(3) **सुख**–जो स्वाभाविक भाव के आवरण के विनाश होने से आत्मिक शांतरस अथवा जो आनन्द उत्पन्न होता है उसे सुख कहते हैं। सुख का लक्षण अनाकुलता है। स्वभाव प्रतिघात का अभाव ही सुख है। मोहनीय कर्म के उदय से इच्छा रूप आकुलता उत्पन्न होती है सो ही दुःख है। मोहनीय कर्म के अभाव से आकुलता का अभाव हो जाता है और आत्मिक परम आनन्द उत्पन्न होता है वही सुख है।

(4) **वीर्य**–जीव की शक्ति को वीर्य कहते हैं। आत्मा में अनन्त वीर्य है किन्तु अनादि काल से वीर्यान्तराय कर्म ने उसको घात कर रखा है। उसके क्षयोपशम के अनुसार कुछ वीर्य प्रकट होते है। पूर्ण क्षय होने के बाद अनन्त वीर्य प्रकट होता है। ये चारों गुण जीव के विशेष गुण हैं।

(5) **स्पर्श**–जो स्पर्श किया जाता है अर्थात् स्पर्शेन्द्रिय के द्वारा जाना जाता है वह स्पर्श है। कोमल, कठोर, हल्का, ठंडा, गरम, रूखा, चिकना ये स्पर्श के आठ भेद हैं। वायु देखने में नहीं आने पर भी स्पर्शेन्द्रिय के द्वारा उसकी अनुभूति की जाती है इसलिए वायु भी पुद्गल है। सूर्य किरण में गर्म स्पर्श होने के कारण एवं दिखाई देने के कारण भी सूर्य किरण पुद्गल है।

(6) **रस**–जो स्वाद को प्राप्त होता है वह रस है। तीखा, कडुवा, खट्टा, मीठा, कसैला ये रस के पाँच भेद हैं।

(7) **गन्ध**–जो सूँघा जाता है वह गंध है। सुगंध-दुर्गंध के भेद से गंध दो

प्रकार की होती है।

(8) **वर्ण**-जो देखा जाता है वह वर्ण है। काला, पीला, सफेद, नीला, लाल ये वर्ण के मुख्य पाँच भेद है। स्पर्शादि के जो आठ आदि भेद बताये हैं वे मूल भेद हैं। प्रत्येक, स्पर्शादि के संख्यात, असंख्यात और अनन्त भेद होते हैं। छाया एवं अंधकार, वर्ण होने के कारण वे भी पुद्गल हैं क्योंकि अंधकार, प्रकाश की भाँति चक्षु से दिखाई देता है। जिसमें वर्ण होता है उसमें स्पर्शादि अविनाभावी गुण पाये जाने के कारण एवं पौद्गलिक इन्द्रिय के माध्यम से जानने के कारण अंधकार छायादि पुद्गल की पर्यायें हैं। इस प्रकार भी शंका नहीं करनी चाहिए कि जो चाक्षुष पदार्थ हैं वह प्रतिभासित होने में आलोक की अपेक्षा रखते हैं। परन्तु तम के प्रतिभास में प्रकाश की आवश्यकता नहीं है इसलिए तम चक्षु का विषय नहीं है? इसका समाधान यह है कि उल्लू आदि बिना प्रकाश के तम को देखते हैं। यह ठीक है कि अन्य चाक्षुष घट, पटादि बिना प्रकाश के हम नहीं देख सकते हैं किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि तम के देखने से भी प्रकाश की आवश्यकता पड़े। संसार में पदार्थों के विचित्र स्वभाव होते हैं। वे विचित्र स्वभाव के कारण ज्ञान में भी विचित्र रूप से प्रतिभासित होते हैं। पीत स्वर्ण, श्वेत मोती आदि में तेजस होने पर भी बिना प्रकाश के प्रतिभासित नहीं होते, जबकि दीपक, चन्द्र और प्रकाश का अवलम्बन नहीं लेते हैं। इसी प्रकार तम भी अपने विचित्र स्वभाव के कारण बिना प्रकाश से चक्षु का विषय होता है, अतः तम भी पुद्गल की पर्याय है। वर्तमान विज्ञान ने भी वैज्ञानिक पद्धति से प्रकाश एवं तम को पौद्गलिक सिद्ध कर दिया है। उपरोक्त स्पर्शादि चार विशेष गुण पुद्गल के हैं। उपरोक्त चारों में से कभी-कभी किसी एकादि गुण की प्रगटता रहती है, अन्य गुणों की नहीं तो भी उसमें अन्य शेष गुण न्यूनता रूप से रहते हैं। इसके कारण जैन सिद्धान्त के अनुसार लोक में जो विभिन्न धातु आदि पाये जाते हैं वे सर्व पुद्गल ही हैं। ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, स्वर्ण, चाँदी, रेडियम, इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन आदि मौलिक एवं स्वतंत्र द्रव्य नहीं हैं किन्तु एक पुद्गल का ही परिणमन या अवस्था विशेष है।

(9) **गति हेतुत्व**-जीव और पुद्गल को गमन में सहकारी होना गति हेतुत्व है। धर्म द्रव्य का यह विशेष गुण है।

(10) **स्थिति हेतुत्व**-जीव और पुद्गल को ठहरने में सहकारी होना स्थिति

हेतुत्व है। अधर्म द्रव्य का यह विशेष गुण हैं।

(11) **अवगाह हेतुत्व**-समस्त द्रव्यों को अवकाश देना अवगाहन हेतुत्व है। आकाश द्रव्य का यह विशेष गुण है।

(12) **वर्तना हेतुत्व**-समस्त द्रव्यों के वर्तन में (परिणमन) सहकारी होना वर्तना हेतुत्व है। काल द्रव्य का यह विशेष गुण है।

चेतनत्व एवं अचेतनत्व आदि का पहले वर्णन किया जा चुका है। चेतनत्व समस्त जीवों में पाया जाता है इसलिए इसको सामान्य गुण कहा गया है, किन्तु पुद्गलादि में नहीं पाया जाता है इसलिए विशेष गुण कहा गया है। इसी प्रकार अन्य गुणों को भी जानना चाहिए।

बिगबैंग/महाविस्फोट से विश्व सिद्धांत की समीक्षा-
वैश्विक अनेकांत सिद्धांत (वैश्विक शोध-बोध युक्त कविता)
कार्य-कारण संबंध व इससे परे परम सत्य

(चाल : बस्ती-बस्ती पर्वत-पर्वत....., तुम दिल की....., सायोनारा.....)

कार्य-कारण महान् सिद्धांत...इससे परे (भी) है परम सत्य...2
लोक-अलोक व्यापी कार्य-कारण (सिद्धांत)...इससे परे भी है शुद्ध द्रव्य...2...(स्थायी)
आस्रव-बंध-संवर-निर्जरा...पुण्य-पाप व मोक्ष पदार्थ...
सभी कार्य-कारण संबंध युक्त...(किन्तु) षट द्रव्य इससे मुक्त...
पञ्च परिवर्तन चौरासी लक्ष योनि...कार्य-कारण संबंध युक्त...
किन्तु जीव द्रव्य तो स्वयंभू-स्वतंत्र...(उक्त) कार्य-कारण संबंध मुक्त...(1)
द्विअणुक (स्कंध) से ले महास्कंध तक...कार्य-कारण सिद्धांत युक्त...
किन्तु शुद्ध पुद्गल द्रव्य/(शुद्ध अणु)...कार्य-कारण सिद्धांत मुक्त...
''परस्पर उपग्रहो जीवानां'' से लेकर...''परस्पर उपग्रहो होते द्रव्यणाम्''...
किन्तु शुद्ध द्रव्यों के अस्तित्व...निश्चयनय से स्व-आश्रित/(स्व-निष्पन्न)...(2)
गुण भी परस्पर उपकारी होते...(किन्तु) निश्चय से द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः...
एक गुण अन्य गुण रूप में परिणमन...नहीं करते यह अगुरुलघु गुण...

संसारी जीवों के जन्म-मरण...सुख-दुःखादि कार्य-कारण सहित...
चैतन्य आदि गुण जीव द्रव्य के...कार्य-कारण संबंध से रहित...(3)
चैतन्य गुण तो जीवों के स्वाभाविक...वस्तुनिष्ठ अनुजीवी गुण हैं...
शुद्ध जीवों के अनंत ज्ञान दर्श सुख...वीर्यादि वस्तुनिष्ठ/(अनुजीवी) गुण हैं...
स्थूल भौतिक विश्व तो कार्य...कारण सिद्धांत सहित है...
षट् द्रव्यमयी लोक-अलोक अकृत्रिम...व स्वभाव से निष्पन्न है...(4)
बिगबैंग यदि अवास्तविक से हुआ (है)...तो आकाश-काल-जीव कहाँ से आये...
बिगबैंग तो स्थूल भौतिक अशुद्ध घटणा...तो बिन कारण से हुआ कैसे?...
भौतिक कार्य-कारण से परिपूर्ण विश्व को...मानना नहीं है यथार्थ सत्य...
शुद्ध अणु को भी जब भौतिक विज्ञानी...(पूर्णतः) न जान पाये कैसे जानेंगे परम सत्य...(5)
जीवों के अनुजीवी गुण तो भौतिक...कार्य-कारण से परे है...
भौतिकवादी दार्शनिक व वैज्ञानिकों की...क्षमता से भी परे है...
इन्द्रिय-मन व तर्क-भौतिक यंत्रों से...परम सत्य न (पूर्ण) ज्ञात है...
इनसे परे सर्वज्ञ ज्ञानगम्य...'कनक' का यह ही लक्ष्य है...(6)

चितरी, दिनांक 17.10.2017, अपराह्न 5.35 (धन्य त्रयोदशी)

(इस विषय संबंधी विशेष परिज्ञान हेतु कविकृत कृतियों 1. विश्व विज्ञान रहस्य, 2. विश्व द्रव्य विज्ञान, 3. अनंत शक्ति संपन्न परमाणु से लेकर परमात्मा तक, 4. ब्रह्माण्डीय जैविक रासायनिक विज्ञान एवं 5. स्वतंत्रता के सूत्र आदि का अध्ययन करें।)

व्याकरण से लेकर अनेकांत सिद्धांत संबंधी शोधपूर्ण कविता-

विरोध सापेक्ष अविरोध

(चाल : आत्मशक्ति....., सायोनारा.....)

दुर्लभ है अलभ्य नहीं आत्मोपलब्धि।
दुरूह है अगम्य नहीं मोक्ष की प्राप्ति।
अपूर्व है मोक्ष प्राप्ति संसारी जीवों के लिए।

भावी में मोक्ष संभव भव्य जीवों के लिए।

अज्ञेय है मोही के लिए परमात्मा स्वरूप।

(सुज्ञेय है मोही के अज्ञान भी परमात्मा के लिए।)

अज्ञये नहीं है कुछ भी परमात्मा के लिए।

सकारण होते हैं सभी व्यवहारनय के सत्य।

अकारण होते हैं सभी शुद्ध परम सत्य।

असंभव है परम सत्य का असत्य होना।

संभव है संभाव्य का सत्य घटित होना।

अदृश्य है अमूर्तिक द्रव्य छद्मस्थ हेतु।

दृश्यमान है अमूर्तिक द्रव्य भी सर्वज्ञ हेतु।

अभूतपूर्व है मोही के लिए आत्म-श्रद्धान।

भूतपूर्व (है) भी मुक्त के लिए आत्म-श्रद्धान। (प्रथमोपशम सम्यक्त्व की अपेक्षा)

निकम्मा होते है केवल शुद्ध परमात्मा।

निकम्मा न होते है कोई अशुद्ध आत्मा।

अहंभावी होते है जो शुद्धात्मा लीन।

अहंकारी होते है जो मोह से आच्छन्न।

स्वाभिमानी होते है जो शुद्धात्मा के ज्ञाता।

अभिमानी होते है जो मोही मूढ़ात्मा।

दिशा नामकरण होता है सापेक्ष।

दिशा नामकरण न होता है निरपेक्ष।

अनेकांत भी होता है अनेकांत।

निरपेक्ष न अनेकांत सापेक्ष है अनेकांत।

स्याद्वाद के भङ्ग भी होते हैं सप्त/(अनंत) भेद।

निर्विकल्प स्व-सम्वेदन होता है भेद रिक्त।

परम शुद्ध सत्य-द्रव्य होते है निरपेक्ष।

अनंत परम रहस्य छद्मस्थ न ज्ञानगम्य।

अनंत परम रहस्य सर्वज्ञ ज्ञानगम्य।

परम सत्य/(द्रव्य) भी नास्ति पर-स्वरूप अभावतः।
सर्वथा नास्ति स्वरूप संभव नहीं कदाचित्।
ज्ञान बिना न ज्ञेय, ज्ञेय बिना न ज्ञान।
सभी ही ज्ञानगम्य सो होते हैं सर्वज्ञ।
सर्वथा न सर्वथा सत्य जो होता निरपेक्ष।
सापेक्ष-निरपेक्ष का 'कनक' रचा है काव्य।

चितरी, दिनांक 21.10.2017, रात्रि 7.35

(विशेष परिज्ञान हेतु कविकृत 'अनेकांत सिद्धांत' ग्रंथ का अध्ययन करें।)

सहज V/S दुर्लभ

(सहज ही दुर्लभ क्यों?)

सहज आत्मिक गुण प्राप्त करना दुर्लभ क्यों!?

(चाल : सायोनारा....., आत्मशक्ति....., तुम दिल की.....)

आत्मविश्वास सबसे सहज है, स्व-आत्म स्वभाव होने से।
किन्तु अज्ञानी हेतु होता दुरूह, मोह से भ्रमित होने से।।
आत्म ज्ञान तो सबसे सहज है, स्वयं ही ज्ञानरूप होने से।
किन्तु रागी-द्वेषी-मोही कुज्ञानी रहता, आत्म-रुचि/(श्रद्धा) न होने से।। (1)

आत्मानुचरण सबसे सरल है, स्वयं का आचरण होने से।
आत्मविश्वास ज्ञान बिन आचरण, न होता राग-द्वेष युक्त होने से।।
आत्मविकास तो सबसे सहज है, आत्मा में अनंत शक्ति होने से।
आत्मविश्वास ज्ञान आचरण बिन, विकास न होता प्रमाद युक्त होने से।। (2)

आत्मसुख तो सबसे सहज, आत्मा में अनंत सुख होने से।
किन्तु आत्मिक सुख मिलना कठिन है, विकार भाव होने से।।
उत्तम क्षमा सरल-सहज है, क्षमा आत्मा का गुण होने से।
किन्तु क्षमा भाव धारण कठिन है, क्रोध से क्षोभित होने से।। (3)

मृदुता-सरलता-शुचिता-सत्यनिष्ठा, प्रामाणिकता आदि आत्म गुण है।
अतः इन्हें पाना सहज होने पर भी, मान-मायादि लोभादि से दुर्लभ है।।
किन्तु अंध श्रद्धा अविवेकपना, कुआचरण आदि अनात्म भाव है।
तथापि ये सब सरलता से होते, आत्मिक शक्ति/(शुद्धि) अभाव से।। (4)
अनादि कालीन कर्म परतंत्रता से, जिसकी आत्मशक्ति (शुद्धि) होती क्षीण।
वे आत्म-स्वभाव को सरलता से न पाते, विभाव भाव में होने से।।
ऊर्ध्वगति करना जीवों का स्वभाव, तथापि ऊर्ध्वगति न सरल है।
शुद्ध जीव की गति होती है ऊर्ध्व, शुद्ध में अनंत शक्ति प्रगट है।। (5)
अतः स्व-शक्ति प्राप्त करने हेतु, परम शुद्ध होना अनिवार्य।
विकार भाव संपूर्ण नष्ट से, परम शुद्ध होता है जीव।।
शुद्धता से शक्ति प्रगट होती, जिससे मिलती सभी उपलब्धि।
आत्मोपलब्धि प्राप्ति के हेतु, साधनारत है 'कनकनंदी'।। (6)

चितरी, दिनांक 04.11.2017, रात्रि 8.45
(यह कविता ब्र. संध्या के कारण बनी।)

संदर्भ-

आत्मस्थिरता की आवश्यकता

परः परस्ततो दुःखमात्मैवात्मा ततः सुखं।
अत एव महात्मानस्तन्निमित्तं कृतोद्यमाः।। (45)

The not-self are suely never the self, only sorrow accures to the soul from them; the self ever remains it self; it is therefore the cause of happiness; because of this, great persanages have exerted themselves for the realigation of the self!

पर देह धनादि पर ही है। उसे कभी भी आत्मा का, स्वयं का नहीं कर सकते हैं। इसलिए उसमें आत्मा का आरोपण करना दुःखों को निमंत्रण देना है। क्योंकि वे पर द्रव्य दुःखों के द्वार है, दुःखों के निमित्त है। उसी प्रकार आत्मा आत्मा का ही है। उसे कभी भी देहादि रूप में परिणमन नहीं कर सकते हैं अथवा आत्मा देहादि का उपादान

नहीं है। इसलिए आत्मा से सुख है; दुःख के निमित्त उसके अविषय है। इसके लिए ही तीर्थंकरादि महात्मा आत्मा के निमित्त तपानुष्ठान रूपी उद्योग किया है।

समीक्षा–आचार्यश्री ने इस श्लोक में सुख का आधार तथा उसे प्राप्त करने का संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित उपाय बताया है। उन्होंने यह बताया कि दुःख आत्मा का स्वरूप नहीं है तथा सुख दूसरों से प्राप्त नहीं होता है वरन् दुःख पर का स्वभाव है तथा सुख स्व-स्वभाव है। जो सुख के लिए दूसरों को/अनात्म स्वरूप को अपनाता है वह सुख के परिवर्तन में दुःखों को गले लगाता है। इसके विपरीत जो पर संयोग को त्याग करके आत्मा का ही आश्रय लेता है आलंबन लेता है वह सुख को प्राप्त करता है। इसका रहस्य यह है कि शुद्ध, स्वतंत्र आत्मा का स्वरूप ही अक्षय अनंत सुख स्वरूप है तथा शरीरादि पौद्गलिक द्रव्य है, जिसमें सुख का सर्वथा अभाव है। उसको स्वीकार रूप में जो मोह, राग है वह दुःख के निमित्त है। क्योंकि उसके कारण जो कर्म बंध होता है, उससे आत्मा परतंत्र हो जाता है और सुखादि गुण भी दुःख रूप में परिणमन कर लेते हैं परन्तु भेद विज्ञान तथा भेद क्रिया रूप वीतराग चारित्र से पर संबंध रूप बंधन कट जाता है। तब आत्मा के सुखादि गुण प्रगट हो जाते हैं। इसे ही स्वतंत्रता/निःसंगत्व/स्वाधीन मोक्ष कहते है। कहा भी है-

पक्खीणघादिकम्मो अणंतवरवीरिओ अधिकतेजो।
जादो अणिंदिओ सो णाणं सोक्खं च परिणमदि।। (19)

He develops knowledge and happiness after heving exhausted the destructive karmas, being endowed with excellent infinite strength and excessive lustre and after becoming supersensuous.

इस व्याख्यान में यह कहा है कि आत्मा यद्यपि निश्चय से अनंतज्ञान और अनंतसुख के स्वभाव को रखने वाला है तो भी व्यवहार से संसार की अवस्था में पड़ा हुआ है, जब इसका केवलज्ञान और अनंतसुख स्वभाव कर्मों से ढ़का हुआ है, तब तक पाँच इन्द्रियों के आधार से कुछ अल्पज्ञान व कुछ अल्पसुख में परिणमन करता है। फिर जब कभी विकल्प रहित स्वसंवेदन या निश्चय आत्मानुभव के बल से कर्मों का अभाव होता है, तब क्षयोपशम ज्ञान के अभाव होने पर इन्द्रियों के व्यापार नहीं होते हैं, उस समय अपने ही अतीन्द्रिय ज्ञान और सुख को अनुभव करता है,

क्योंकि स्वभाव के प्रगट होने में पर की अपेक्षा नहीं है, ऐसा अभिप्राय है।

स्वभावतः प्रत्येक जीव अनंतज्ञान, अनंतसुख, अनंतवीर्यादि, अनंतगुणों का अखण्ड पिण्ड है तथापि कर्मों के आवरण के कारण वे गुण आत्मा में ही गुप्त रूप में छिपे हुए हैं। कुंदकुंद देव ने समयसार में कहा भी है-

सो सव्वणाणदरसी कम्मरयेण णियेणवच्छण्णो।

संसारसमावण्णो णवि जाणदि सव्वदो सव्वं।। (67)

वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी जीव कर्मरज से आवृत्त होकर संसार में पतित हुआ है और सर्वदा सबको नहीं जानता है परन्तु जब वही कर्मरज रूपी आवरण हट जाता है तब वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनंतसुख एवं अनंतवीर्य सम्पन्न बन जाता है इसलिए वस्तुतः ज्ञान या सुख, पर से प्राप्त नहीं होता है परन्तु सहज आत्मोत्थ है।

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।

उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्।। (27 गीता पृ. 76)

जिसका मन भलीभाँति शांत हुआ है, जिसके विकार शांत हो गये है, ऐसा ब्रह्ममय हुआ निष्पाप योगी अवश्य उत्तम सुख प्राप्त करता है।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकलमषः।

सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते।। (28)

आत्मा के साथ निरन्तर अनुसंधान करते हुए पाप-रहित हुआ यह योगी सरलता से ब्रह्मप्राप्ति-रूप अनंत सुख का अनुभव करता है।

सामग्रीविशेष विश्लेषिताखिलावरणमतीन्द्रियमशेषतो मुख्यम्। (11)

(प्रमेयरत्नमाला पृ. 83)

सामग्री की विशेषता से दूर हो गये है समस्त आवरण जिसके, ऐसे अतीन्द्रिय और पूर्णतया विशद ज्ञान को मुख्य प्रत्यक्ष कहते है।

ऐश्वर्यमप्रतिहतं सहजो विरागस्तृप्तिर्निसर्गजनिता वशितेन्द्रियेषु।

आत्यान्तिकं सुखमनावरणा च शक्तिर्ज्ञानं च सर्वविषयं भगवंस्तथैवा।।

पृ.102

तथा संन्यासियों के गुरु अवधूत के भी वचन उसके विषय में इस प्रकार है- हे भगवान्! आपका ऐश्वर्य अप्रतिहत (अखण्ड) है, वैराग्य स्वाभाविक है,

तृप्ति नैसर्गिक है, इन्द्रियों में वशिता है अर्थात् आप जितेन्द्रिय हैं, आपका सुख आत्यन्तिक अर्थात् चरम सीमा को प्राप्त है, शक्ति आवरण रहित है और सर्व विषयों को साक्षात् करने वाला ज्ञान भी आपका ही है।

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।

(पतञ्जली योगदर्शन 24 पृ.174)

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेशरूप क्लेशों से, शुभाशुभकृतियों से जन्य पुण्य-पाप रूप कर्मों से, पुण्य-पाप के फल-जाति, आयु तथा भोग प्रतिनिधि सुख दुःख रूप विपाक से और सुख-दुःखात्मक भोग से जन्य विविध वासनाओं से अस्पृष्ट, जीवरूप अन्य पुरुषों से विशिष्ट, चेतन ईश्वर है।

सत्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च। (49)

पुरुष (आत्मा) एवं प्रकृति (कर्म) के भेदज्ञान से सम्पन्न योगी को संपूर्ण पदार्थों के अधिष्ठातृत्व का (अर्थात् संपूर्ण पदार्थों को नियंत्रित करने के सामर्थ्य का) और समस्त पदार्थों के ज्ञातृत्व का (अर्थात् संपूर्ण पदार्थों को ठीक-ठाक जान लेने की शक्ति का) लाभ होता है।

तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम्। (50)

विवेक ख्याति की निष्ठा द्वारा, विवेक ख्यातिजन्य सिद्धिविषयक परम वैराग्य की प्राप्ति हो जाने से, पर वैराग्यजन्य असम्प्रज्ञात समाधि द्वारा, रागादि दोषों के मूल कारण अविद्या के समाप्त हो जाने पर पुरुष को कैवल्य भी प्राप्त हो जाता है।

सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम। (55) पृ. 424

बुद्धि एवं पुरुष की शुद्धि के समान रूप से हो जाने पर मोक्ष हो जाता है।

जिघच्छापरमारोगा, संखारा परमा दुखा।
एतं ञत्वा यथाभूतं निब्बानं परमं सुखं।। (धम्मपद नं.पृ. 65)

भूख सबसे बड़ा रोग है, संस्कार सबसे बड़े दुःख हैं, इसे यथार्थ (रूप से) जानकर निर्वाण सबसे बड़ा सुख है।

धन्य हे! पावन मानव महान्

(चाल : बस्ती-बस्ती पर्वत-पर्वत....., सायोनारा.....)

धन्य हे ! पावन मानव महान्...आत्मविश्वास ज्ञान चारित्रवान्...
उदार सहिष्णु-गुणग्राही महान्...स्व-पर विश्वमंगल भाव संपन्न...

स्व-गुण दोष समीक्षा गुण संपन्न...स्व-गुण वर्द्धन व स्व-दोष हरण...
गुण-गुणी प्रशंसा व गुण ग्रहण...पर दोषों से भी शिक्षा ग्रहण...(1)...

सनम्र सत्यग्राही व ज्ञान जिज्ञासु...शोध-बोध पूर्ण ज्ञान पिपासु...
अंधानुकरण व ढोंग-पाखण्ड शून्य...मौलिक-स्वतंत्र-शुचिता पूर्ण...

दीन-हीन व अहंकार रिक्त...स्वाभिमान 'सोऽहं' 'अहं' भाव सहित...
वैर-विरोध व परनिंदा रहित...मैत्री-प्रमोद-माध्यस्थ-करुणा युक्त...(2)...

ईर्ष्या-द्वेष व घृणा से रहित...समता-शांति-धैर्य सहित...
अप्रमाणिकता व पक्षपात रहित...सत्यनिष्ठ व अनुभव सहित...

सरल-सहजता व क्षमता सहित...दया-दान व परोपकार सहित...
आत्म उपकार युक्त परोपकार सहित...स्वावलंबन अनुशासन सहित...(3)...

अपेक्षा-उपेक्षा व प्रतीक्षा रिक्त...एकला चलने के सामर्थ युक्त...
मान-अपमान में समता युक्त...सत्य-तथ्य पूर्ण प्रज्ञा सहित...

प्रज्ञाशील हो धूर्तता रहित...दृढ़निश्चयी हो क्रूरता रिक्त...
वाग्मी हो आप वाचलता रिक्त...तेजस्वी हो आप क्षमा सहित...(4)...

अनिन्दक हो समीक्षा सहित...कृतज्ञ हो आप कृतघ्नता रिक्त...
परोपकारी हो आप स्वार्थ रहित...श्रद्धाशील हो अंधश्रद्धा रहित...

लौकिक परे अलौकिक गुण सहित...ख्याति-पूजा-लाभ-वर्चस्व रिक्त...
धीर-वीर-गंभीरता सहित...सत्यग्राही हो कठोरता रहित...(5)...

आपसे ही सभ्यता-संस्कृति जन्मे...आपके मार्ग ही आदर्श बने...
आपको न जानते क्षुद्र मानव...'कनकनंदी' के आप आदर्श...(6)...

चितरी, दिनांक 07.11.2017, प्रातः 7.15

इंदौर में धन्य घोषित हुई सिस्टर रानी मरिया

जिसने 22 साल पहले सिस्टर मरिया की 54 बार चाकू मारकर हत्या की थी, परिवार ने उसे माफ कर पास बैठाया

कैथोलिक समाज ने शनिवार को सिस्टर रानी मरिया को धन्य घोषित किया। समारोह में वेटिकन से आए पोप फ्रांसिस के प्रतिनिधि ने धन्य घोषित करने की प्रक्रिया पूरी कराई। सिस्टर रानी की हत्या करने वाला समंदर सिंह भी समारोह में पहुँचा। पर सिस्टर रानी के परिजनों से मिलने की हिम्मत न जुटा सका। समंदर के आने की खबर जब सिस्टर रानी की बहन सिस्टर सेल्मी पॉल को लगी तो उन्होंने उसे अपने पास बुलाकर साथ बैठा लिया।

फरवरी 1995 में हुई थी हत्या-मध्यप्रदेश के देवास के उदयनगर में समंदर ने सिस्टर रानी की हत्या की थी। समंदर ने सिस्टर पर चाकू से 54 वार किए थे। उसे 20 साल कैद की सजा हुई थी। लेकिन सिस्टर रानी के परिवार ने समंदर को माफ कर दिया। साथ ही सजा भी कम करवाई।

सिस्टर के परिवार ने मेरा जीवन बदल दिया : समंदर-जीवनभर मुझे पछतावा रहेगा। मैं आया पर मुझे सिस्टर के परिवार से मिलने की हिम्मत नहीं हो रही थी। मेरा अपना परिवार नहीं है। सिस्टर का परिवार ही मेरा परिवार है। उन्होंने मेरा जीवन बदल दिया। वही मेरी बहन है।

बहन की तरह मैंने भी उसे माफ किया : सेल्मी पॉल-मेरी बहन ने दुश्मनों को माफ कर दिया था। मैं भी उनकी तरह काम करना चाहती हूँ। 2002 में मैंने जेल में समंदर को राखी बाँधी थी। तब से यह रिश्ता चला आ रहा है। मुझे उससे कोई शिकायत नहीं है। वह अब भलाई के काम करता है।

संदर्भ-

अग्निपुराण व रामायण का मत-इनके अतिरिक्त अग्निपुराण में महान् व श्रेष्ठ शक्तियों में विचारणीय कुछ और गुण भी बताये गये हैं। ये अग्निपुराणोक्त गुण वाल्मीकि रामायण से भी सर्वथा मेल खाते हैं। ये पूर्वोक्त गुणों के अतिरिक्त गुण हैं।

(क) त्रित्रिक-त्रिक शब्द का अर्थ है, तीन का समूह। त्रित्रिक का अर्थ होगा .. गुण। ये सब मानव की भीतरी विशेषताओं की ओर इंगित करते हैं।

(1) अनसूया-दूसरे की उन्नति को देखकर डाह न करना, दूसरों की बढ़ती से खुश होना तथा स्वयं भी प्रगतिगामी होना पहला गुण है। इसका पारिभाषिक नाम अनसूया है।

(2) दया-सब जीवों पर दया करने का स्वभाव होना। बिना कारण ही किसी को कष्ट न पहुँचाना।

(3) क्षांति-क्षमा भाव। सामर्थ्य होने पर भी दूसरों के अपराधों या त्रुटियों को एकाध बार क्षमा कर देना।

सत्यपि सामर्थ्ये अपकारिणि अपकाराचिकीर्षा। (नागभट्ट)

आपके पास सामर्थ्य है, तब भी उसका प्रयोग अपकारी व्यक्ति को अपकार की भावना से दण्ड देने में न करना शांति है। यह प्रथम त्रिक है।

(1) मंगलाचार-परोपकारार्थ क्रिया करना। मानव मात्र के लिए हितकारक, देश, प्रदेश, ग्राम, जनपद, अपने वर्ग या आश्रितों के कल्याणर्थ निःस्वार्थ भाव से कार्य करने की भावना रखना।

(2) तद्योग-उक्त मंगलाचार को जीवन में उतारने हेतु प्रयास करना।

(3) शौच-पवित्रता। तन की शुद्धि, मन की शुद्धि, आचरण (कर्म) की शुद्धि अर्थात् पवित्रता। यह द्वितीय त्रिक है।

(1) स्पृहा-इच्छा। इच्छा अर्थात् आगे बढ़ने की इच्छा। तपस्या, त्याग भाव या धनैश्वर्य या व्यापार वृद्धि या स्व-कर्त्तव्य की भावना की उत्कृष्ट इच्छा।

तपोधनं ब्राह्मणानां सन्ततं तपसि स्पृहा।
ऐश्वर्येक्षत्रियाणां च वाणिज्ये च तथा विशाम्।। (ब्रह्मवैवर्तपुराण)

अपने से श्रेष्ठ वर्ण का आचार पाने की स्पृहा करना और प्रशंसनीय कहा गया है।

(2) आकर्पण्य-कृपणता, कंजूसी व स्वार्थ की विकृत अवस्था न होना। दीनता, हीनता, गिड़गिड़ाहट, समय पड़ने पर स्वार्थवश गधे को भी पूज्य मानने की आदत न होना। वचन का पालन करना।

(3) शौर्य-निडरता। अन्याय से न डरना, असत्य से मुँह मोड़ना, सत्य से पीछे न हटना। यह तीसरा त्रिक है।

अनसूया दया शान्तिमंगलाचार युक्तता।

शौचं स्पृहा त्वकार्पण्यमनायासश्च शूरता।। (अग्निपुराण)

महान् पुरुषों में ये गुण स्वभावतः ही होते हैं। यदि ये सारे गुण है तो महापुरुष होने में संदेह नहीं है। इनका उल्लेख करने का आशय यह है कि यदि ये गुण किसी में न हो तो प्रयत्नपूर्वक इन्हें अपनाने में भी महत्ता है। इस त्रित्रिक को आप पूर्वोक्त सत्त्व व प्रकृति का ही खुलासा समझने के लिए भी स्वतंत्र हैं।

(ख) त्रिभिर्व्याप्त-तीन चीजों में व्याप्त होना। छा जाने का गुण होना इक्कबाल या तेजस्विता, दुर्धर्षता, दबंगपन (शालीनता युक्त) यह एक गुण है। दूसरा गुण यश है। प्रसिद्धि, नेकनामी होना, सुनाम होना, लोग मुँह पर या पीठ पीछे उसे कमजोर, दब्बू न माने बुरा न समझें। शत्रु भी प्रशंसा करने के लिए मजबूर हो जाये।

तीसरा गुण है-श्री। शोभा, ऐश्वर्य, लक्ष्मी, प्रभा, कांति होना।

इन तीनों गुणों में सारी दिशाओं में या सारे देश में या सारी जाति में या सारे वर्ग में या जातिवर्ग में छा जाना। अर्थात् सर्वमुख्य, देशमुख्य, जातिमुख्य या कुलमुख्य होना।

(ग) त्रिप्रलम्ब-अर्थात् तीन अंग लंबे या बड़े होना। हाथ या भुजाएँ व अण्डकोष थोड़ा लटकते से हो। बिल्कुल अदृश्य न हो। भौहें लंबी हो। यह उत्तम गुण है।

(घ) त्रिबली-पेट पर तीन बलियाँ या धारियाँ पड़ना। विशेष आगे यथावसर कहा जायेगा।

(ङ) त्रिविनत-देवता, गुरु व विद्वान् ब्राह्मणों के प्रति (विनत) विनम्रता रखना भी अच्छे लक्षणों में गिना गया है।

(च) चतुर्लेख-दोनों हाथों या पैर के तलुवों में ध्वजा, छत्र, चँवर आदि बत्तीस उत्तम चिह्नों में कम से कम एक-एक चिह्न होना।

(छ) चतुष्किष्कु-अर्थात् अपनी अंगुलियों से नापने पर विशिष्ट बड़े लोग 96 अंगुल ऊँचे होते हैं। किष्कु शब्द का अर्थ है-एक हाथ की लंबाई कुहनी की हड्डी

से कलाई तक नापे तब एक हाथ होगा। चार हाथ ऊँचा कम से कम होना चाहिए। लेकिन इसे अग्निपुराण में 96 अंगुल ही कहा है-

षण्णवत्यंगुलोत्सेधश्चतुष्किष्कुः प्रमाणतः। (अग्निपुराण)

अंगुलियों समेत हाथ की लंबाई मानने पर 96 अंगुल संभव हो जाता है। यह ऊँचाई सामान्यतः 6 फीट होगी।

(ज) चतुर्दंष्ट्र-आठ-आठ दाढ़े अर्थात् एक तरफ 4 दाढ़ें होना। ऐसा होने पर ही व्यक्ति के मुँह में 32 दाँत होंगे।

(झ) नवामल-9 स्थानों पर स्वाभाविक रूप से मैल इकट्ठा न होना (1) जीभ (2) जांघें (3) कमर की हड्डी (4) हाथ (5) नाक (6) आँखें (7) कान (8) लिंगाग्र (9) गुदामुख।

(ञ) चतुर्गन्ध-नाक, बगलें, लिंगाग्र व पसीना इन चारों चीजों में तीव्र गंध न होना भी उत्तम पुरुषों का लक्षण है।

(ट) न्यग्रोधपरिमण्डल-दोनों हाथों को सीधा फैला लें। मुँह पूर्व की ओर रखें। दोनों हाथ जितना फैला सके, कंधों की सीध में फैलायें। अब बड़ी अंगुली के पोर से लेकर दूसरे हाथ की बड़ी अंगुली की पोर तक धागे से नापें। यह चौड़ाई हुई। इसी तरह धागे से एड़ी से लेकर चोटी तक नापें। यह ऊँचाई हुई। ये दोनों नाप महान् लोगों में बिल्कुल बराबर या लगभग बराबर होती है। इस नाप-तौल वाले व्यक्ति को ही न्यग्रोधपरिमण्डल अर्थात् बड़ के पेड़ जैसे फैलावा वाला कहा जाता है।

प्रसारित भुजस्येह मध्यमाग्र द्वयान्तरम्।

उच्छ्रायेण समं यस्य न्यग्रोधपरिमण्डलः।। (अग्निपुराण)

इसका समर्थन पाराशरहोराशास्त्र में भी किया गया है। महापुरुषों की श्रेणी में आने वाले लोग विरले ही होते हैं। लेकिन अग्निपुराण में इन गुणों को प्रत्येक सफल व सुखी मनुष्यों में होना आवश्यक बताया है। अतः स्वयं की परीक्षा करने के बाद यदि कुछ कमी दिखे तो निराश न हों। अभ्यास व विचारों की उच्चता, उदात्तता के द्वारा उन्हें अपने भीतर विकसित करने का प्रयत्न करें। सफलता आपके चरण चूमेगी। लोगों में प्रशंसा पायेंगे। इस तरह व्यक्ति से प्रथम बार मिलते समय, सरलता से जानी जाने योग्य बातों के मानदण्ड आपको बताये गये हैं। अब आगे के प्रकरणों में शरीर के

अंग-उपांगों का विवरण व आलोचनात्मक विचार क्रमशः व पृथक् रूप से वर्णित किये जायेंगे। (शरीर लक्षण)

दूसरों की सफलता सेलिब्रेट करने में आपका भी फायदा

हम सब सफल होते हैं तो खुशी मनाते हैं। सफलता को सेलिब्रेट करते हैं, लेकिन खुशी व्यक्त करने के मामले में ऐसी ही प्रतिक्रिया दूसरों की सफलता के समय हमारी क्यों नहीं होती? तिब्बती धर्म गुरु दलाई लामा ने कहा है कि जब हम दूसरों के प्रति प्रेम और उनकी खुशी के प्रति आदर व्यक्त करते हैं तो इससे न सिर्फ दूसरों को अच्छा लगता है, बल्कि इससे हमारे मन में भी खुशी और शांति पैदा होती है। कुछ इसी तरह की बात हार्वर्ड यूनिवर्सिटी में हाल ही में हुए एक शोध में पता चली है। जब हम दूसरों की सफलता को सेलिब्रेट करते हैं तो इससे हमारे भीतर भी भविष्य के प्रति सकारात्मक भाव पैदा होता है। जो हमें खुशी और सफलता की ओर ले जाता है।

हार्वर्ड का यह शोध 70000 महिलाओं पर हुआ। इसके आधार पर कहा गया कि दूसरों की खुशी सेलिब्रेट करने से आशा का भाव पैदा होता है, जिससे दिल सहित कई गंभीर बीमारियों का खतरा कम हो जाता है। शोध में यह भी कहा गया है कि कैंसर और पक्षाघात जैसी गंभीर बीमारियों से होने वाली समय से पहले मौत का खतरा भी इससे कम हो जाता है। एक अन्य शोध में भी यही बात कही गई है कि आशा भावनात्मक और शारीरिक दोनों तरह के स्वास्थ्य के लिए अच्छी होती है।

दरअसल दूसरों की सफलता पर खुशी मनाने से संतोष का भाव पैदा होता है। इससे कड़वाहट कम होती है और संपूर्णता का एहसास होता है। अगर आप टीम के साथ काम करते हैं तो साथियों की सफलता सेलिब्रेट करने से अपनी टीम के सदस्यों के साथ आपके संबंध बेहतर होते जाते हैं। इससे टीम मैंबर्स का भी आपके प्रति व्यवहार सकारात्मक और बेहतर हो जाता है। इस तरह आपके पास भी अच्छा काम करने के अवसर आने लगते हैं। जब हम दूसरों की सफलता को सेलिब्रेट करते है तो हमारे भीतर भी एक तरह का विल पावर विकसित होता है। ध्यान रखने की बात यह है कि अन्य लोगों की सफलता भी आपको फायदा पहुँचा सकती है। दूसरों को

उनकी सफलता पर बधाई देने से आपका सोशल दायरा बढ़ता है। आप चाहे तो उन्हें गिफ्ट देकर इन संबंधों को और मजबूत कर सकते हैं। एक सबसे अहम बात यह है कि जब आप सफलता की अच्छी खबर अपने परिवार या अपने आसपास के लोगों के साथ साझा करते हैं तो-इससे वातावरण पॉजिटिव हो जाता है।

भौतिक सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि से परे आध्यात्मिक उपलब्धि से शांति

(चाल : बस्ती-बस्ती पर्वत-पर्वत....., सायोनारा.....)

अधिकतर मानव भ्रष्ट होते...सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि हेतु...2
इस हेतु प्रमुख/(अंतरंग) कारण होते...राग-द्वेष-मोह-मदादि शत्रु/(हेतु)...2...(ध्रुव)...

परस्पर वे होते कार्य-कारण...एक हेतु भी अन्य के होते कारण...
श्रृंखलाबद्ध होते वे कार्य-कारण...आगम में इसे कहते अक्ष संचरण...

अंतरंग कारण से जीव प्रसिद्धि चाहते...इस हेतु चाहे सत्ता-संपत्ति...
इस हेतु चाहिए धन-जन-भूमि...जिस हेतु व्यापार से ले आक्रमण...(1)...

अधिकतर युद्ध हुए इसी हेतु...देश-विदेशों के पूर्व से अभी तक...
भरत-बाहुबली व राम-रावण युद्ध...स्पार्टा युद्ध से ले अभी तक युद्ध...

ऐसा ही सत्ता हेतु चाहिए संपत्ति...इस हेतु भी होते उक्त कुकाम...
उदाहरण भी उक्त इस हेतु ग्रहणीय...औपनिवेशिक से ले आतंकवाद...(2)...

संपत्ति तो इस हेतु अक्ष समान...इसके केंद्र में घूमती सत्ता/(प्रसिद्धि) आदि...
त्रिभुज के ये होती बाहु या कोण...एक के बिना न बनता त्रिभुज...

किसी भी देश या किसी भी क्षेत्र में...(यथा) होता त्रिभुज का स्वरूप अभिन्न...
तथाहि राजनीति से ले धर्म तक...सत्तादि निर्मित त्रिभुज अभिन्न...(3)...

सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि द्वारा...नहीं मिलती समता-शांति...
समता-शांति प्राप्ति के हेतु...भरत-बाहुबली भी बने संन्यासी...

ऐसा ही सभी तीर्थंकर-गणधर...आचार्य-उपाध्याय व मुनि प्रवर...

महात्मा बुद्ध से लेकर ऋषि-मुनि...सत्तादि त्याग से पाते शांति अपार...(4)...

स्व-आत्मिक सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि...भौतिक सत्तादि से परे की लब्धि...

इससे ही मिलती अक्षय शांति...इस हेतु साधनारत 'कनकनंदी'...(5)...

चितरी, दिनांक 07.11.2017, रात्रि 8.40

संदर्भ-

लोकेष्णा (प्रसिद्धि) एक गंभीर मानसिक रोग

'कारण कार्य संबंध' 'बिन जाने ते दोष गुनन को कैसे तजिए गहिए' 'कारणाभावे कार्याभाव' As you think So you become. As you sow so shell you reap के अनुसार हमें लोकेष्णा के दोषों के निष्पक्ष, गहन, यथार्थ कारणों का अनुसंधान करके दोषों को त्यागकर गुणों को स्वीकार करना केवल आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। इसे ही तो यथार्थ ज्ञान, सम्यग्ज्ञान, वीतराग विज्ञान कहा है। यथा-

'हिताहित परिहार समर्थ प्रमाण तत् ज्ञानमेव।' परीक्षामुख

जो हित की प्राप्ति अहित के परिहार करने में समर्थ है वही ज्ञान यथार्थ से प्रमाणीभूत है। उपर्युक्त दृष्टि से कारणों का वर्णन कर रहा हूँ। कलिकाल में अधिकांश लोग श्रद्धा, विवेक एवं आत्म कल्याण की बुद्धि से रहित होकर धर्माचरण अहंकार की पुष्टि, ख्याति, प्रसिद्धि, यश, लाभ, कीर्ति के लिए करते हैं। पूर्वाचार्यों ने भी कहा है-

भयं दाक्षिण्य कीर्ति च लज्या आशा तथैव च।
पंचभि: पंचमे काले जैनो धर्म: प्रवर्वतते।।

पंचमकाल में लोग जैन धर्म को लोकभय, अन्य का मन दु:खित न होने के लिए कीर्ति, लज्या, आशा से पालन करते हैं। **'प्रवाहे वर्तते लोको न लोक: परमार्थिके:'** **'निकले थे हरि भजन को कातन लगे कपास'** के अनुसार दूसरों का अंधानुकरण, क्षुद्र लक्ष्य, लक्ष्य भ्रष्ट, भीड़ इकट्ठा, लोक प्रसिद्धि नाम बढाई, स्वार्थसिद्धि, दूसरों को नीचा गिराकर स्वयं को ऊपर उठाना आदि कारण भी उपर्युक्त दोष के लिए कारण हैं। तथैव च-

प्रसिद्धि के विभिन्न उपाय

उष्ट्राणां विवाहेषु गीत गायति गर्दभा।
परस्पर प्रंशसंति अहो रूप अहो ध्वनि।।

अर्थात् ऊँट के विवाह में ऊँट ने गधे को गीत गाने के लिए निमंत्रण दिया। गधा आकर उसके विवाह में उसके रूप की प्रशंसा में गीत गाया तो ऊँट प्रसन्न होकर गधे की ध्वनि की प्रशंसा की। इसी प्रकार साधु, श्रावक जिससे स्वयं की स्वार्थसिद्धि होती है उसकी प्रशंसा में सुललित मधुर कंठ से राग अलापते रहते हैं।

घटं भित्वा पटं छित्वा कृत्वा गर्दभं रोहणं।
येन-केन-प्रकारेण मनुष्यः प्रसिद्धः भवेत्।।

घट तोड़कर, वस्त्र फाड़कर, गधे के ऊपर चढ़कर येन-केन प्रकार से भी मनुष्य प्रसिद्ध बनना चाहते है। अर्थात् मनुष्य प्रसिद्ध बनने के लिए योग्य-अयोग्य, न्याय-अन्याय, करणीय-अकरणीय, शोभनीय-अशोभनीय आदि सब कार्य करता है। मेरे दीर्घ अनुभव भी हैं कि अधिकांश सामान्य जन से लेकर साधु-संत तक दान, तप, पूजा, विधान, पंचकल्याणक, केंशलोच, जन्मजयंति, दीक्षाजयंति, चातुर्मास विहार, भाषण-प्रवचन, ज्ञानार्जन से लेकर धर्माजन, फैशन-व्यसन, हाव-भाव, बोली बोलना, चलना, खाना, जीना आदि प्रसिद्धि/दिखावा के लिए करते हैं। यदि अच्छी भावना से दान आदि श्रावक करते है तथा मुनि स्व-कर्त्तव्यों का पालन करते है तब आत्मविशुद्धि, पापकर्म का संवर तथा निर्जरा, पुण्य संचय के साथ-साथ आनुसंगिक रूप से और भी अधिक कीर्ति/प्रसिद्धि स्वयमेव होती है। परन्तु जीव मोह, अहंकार आदि के कारण यथार्थ का परिपालन नहीं कर पाता है। जैसा कि 'मृगमरीचिका।'

जिस प्रकार से सर्प का काँचली त्यागना सरल है परन्तु विष त्यागना कठिन है उसी प्रकार मनुष्य का धनादि बाह्य त्याग करना सरल है परन्तु प्रसिद्धि आदि त्यागना कठिन है। इतना ही नहीं बाह्य त्याग भी लोकेष्णा (प्रसिद्धि) को घटाने के लिए ही नहीं या स्वयमेव जो त्याग से प्रसिद्धि होती है उसके लिए भी नहीं परन्तु अहंकारपूर्ण प्रसिद्धि के लिए करते हैं। कहा भी है-

कंचन तजना सहज है, सहज तिया का नेह।

मान बढाई ईर्ष्या दुर्लभ तजना येह।।

वस्तुतः अंतरंग में जो मान, कषाय, ईर्ष्या भाव, अहं ग्रंथि, हीन ग्रंथि है उसके कारण मान बढाई (लोकेष्णा) की भावना होती है। इसलिए यह लोक प्रसिद्धि की तृष्णा मानसिक गंभीर व्यापक रोग है। इसलिए इसके सद्भाव में मनुष्य विभिन्न प्रकार के कषाय, ईर्ष्या, द्वेष, लड़ाई-झगड़ा, मायाचारी, निंदा, चापलूसी, संक्लेश, तनाव, युद्ध, हिंसा, हत्या, फैशन, व्यसन, आडम्बर, दिखावा आदि करता है जिससे उसे शांति के परिवर्तन में अशांति ही अशांति मिलती है, शारीरिक, मानसिक रोग हो जाते हैं, सज्जनों की दृष्टि में उसकी प्रसिद्धि और भी घट जाती है। नीतिवाक्य है-

क्षांति तुल्यं तपो नास्ति संतोषान्न सुखं परम्।
नास्ति तृष्णा समो व्यार्धिन च धर्मः दया परः।।

इतना ही नहीं इस पाप के कारण अगले भव में भी दुःखी होता है। यथा-

मान बढाई कारज जो धन खरचे मूढ।
मर करके हाथी होयेगा आगे लटकाये सूंढ।।

प्राचीन कथानुसार एक दीर्घ तपस्वी भी अपनी प्रशंसा, प्रसिद्धि के लिए अपने यथार्थ परिचय के छिपाने के भाव के कारण मर करके हाथी हुआ। कहा है-

अधीत्य सकलं श्रुतं चिरमुपास्य घोरं तपो।
यदीच्छसि फलं तयोरहि हि लाभपूजादिकम्।।
छिन्नसि सुतपस्तरोः प्रसवमेव शून्याशयः।
कथं समुपलप्स्यसे सुरसमस्य पक्वं फलम्।। (189) आत्मानुशासन

समस्त आगम का अभ्यास और चिरकाल तक घोर तपश्चरण करके यदि उन दोनों का फल तू यहाँ संपत्ति आदि का लाभ और प्रतिष्ठा आदि चाहता है तो समझना चाहिए कि तू विवेकहीन होकर उस उत्कृष्ट तपरूप वृक्ष के फूल को ही नष्ट करता है। फिर ऐसी अवस्था में तू उसके सुंदर व सुस्वादु पके हुए रसीले फल को कैसे प्राप्त कर सकेगा? नहीं कर सकेगा।

जिस प्रकार कोई मनुष्य वृक्ष को लगाता है, जल सिंचन आदि से उसे बढ़ाता है और आपत्तियों से उसका रक्षण भी करता है, परन्तु समयानुसार जब उसमें फूल आते है तब वह उन्हें तोड़ लेता है और इसी में संतोष का अनुभव करता है। इस

प्रकार से वह मनुष्य भविष्य में आने वाले उसके फलों से वंचित ही रहता है। कारण यह है कि फलों की उत्पत्ति के कारण तो वे फूल ही थे जिन्हें कि उसने तोड़कर नष्ट कर दिया है। ठीक इसी प्रकार से जो प्राणी आगम का अभ्यास करता है और घोर तपश्चरण भी करता है परन्तु यदि वह उसके फलस्वरूप प्राप्त हुई ऋद्धियों एवं पूजा-प्रतिष्ठा आदि में ही संतुष्ट हो जाता है तो उसको उस तप का जो यथार्थ फल स्वर्ग मोक्ष का लाभ था वह कदापि नहीं प्राप्त हो सकता है। अतएव तपरूप वृक्ष के रक्षण एवं संवर्द्धन का परिश्रम उसका व्यर्थ हो जाता है। अभिप्राय यह हुआ कि यदि तप से ऋद्धि आदि की प्राप्ति रूप लौकिक लाभ होता है तो इससे साधु को न तो उसमें अनुरक्त होना चाहिए और न किसी प्रकार का अभिमान ही करना चाहिए। इस प्रकार से उसे उसके वास्तविक फलस्वरूप उत्तम मोक्ष सुख की प्राप्ति अवश्य होगी।

प्रसिद्धि रूपी रोग दूर करने के उपाय

तथा श्रुतमधीष्व शश्वदिह लोक पंक्ति विना
शरीरमपी शोषय प्रथितकाय संक्लेशनैः।
कषायविषयद्विषो विजय से यथा दुर्जयान्
शमं हि फलमामनन्ति मुनयस्तपः शास्त्रयोः।। (190) आत्मानुशासन

लोकेष्णा/प्रसिद्धि बिना अर्थात् प्रतिष्ठा आदि की अपेक्षा न करके निष्कपट रूप से यहाँ इस प्रकार से निरंतर शास्त्र का अध्ययन कर तथा प्रसिद्ध काय-क्लेशादि तपों के द्वारा शरीर को भी इस प्रकार से सुखा कि जिससे तू दुर्जय कषाय एवं विषय रूप शत्रुओं को जीत सके। कारण कि मुनिजन राग-द्वेषादि की शांति को ही तप और शास्त्राभ्यास का फल बतलाते हैं।

अभिप्राय इतना ही है कि प्राप्त हुए विशिष्ट आगमज्ञान एवं तप के निमित्त से किसी प्रकार के अभिमान आदि को न प्राप्त होकर जो राग-द्वेष एवं विषय-वांच्छा आदि परमार्थ सुख की प्राप्ति में बाधक है अतः उन्हें ही नष्ट करना चाहिए। यही उस आगमज्ञान एवं तप का फल है।

धर्म पालन, कर्त्तव्य निर्वहन, साधुत्व, प्रभावना, शिक्षा, दीक्षा, गुरु उपदेश आदि के माध्यम से आत्म कल्याण के साथ-साथ कीर्ति संपादन करनी चाहिए या यथार्थ से

कहे तो कीर्ति/प्रसिद्धि आनुसंगिक रूप से हो ही जाती है, परन्तु ऐसा कोई भी कार्य व्यवहार नहीं करना चाहिए जिससे आत्मग्लानि, संक्लेश, तनाव, लोक निंदा, धर्म की हँसी, सद्गुरु की अपकीर्ति आदि हो। यथा-

जिस प्रकार मैं संसार से पार उतरू, जिस प्रकार से आपको परम संतोष हो, मेरे कल्याण में संलग्न आपका और संघ का परिश्रम जिस प्रकार से सफल हो।

जिस प्रकार मेरी और संघ की कीर्ति फैले, मैं संघ की कृपा से उस प्रकार रत्नत्रय की आराधना करूँगा।

वीर पुरुषों ने जिसका आचरण किया है, कायर पुरुष जिसकी मन से कल्पना भी नहीं कर सकते, मैं ऐसी आराधना करूँगा। भ.आ.

उट्ठानवतो सतिमतो सुचिकम्मस्स निसम्मकारिनो।
सञ्ञतस्य च धम्मजीविनो अप्पमत्तस्य यसोभिवड्ढति।। ध.प.-श्लो. 4

जो उद्योगी, सचेत, शुचि कर्म वाला, सोचकर काम करने वाला है, संयत धर्मानुसार जीविका वाला एवं अप्रमादी है, उसका यश बढ़ता है। (महात्मा बुद्ध)

क्रोधः कामो लोभ मोहो विधित्साऽकृपासूये मान शोकौ स्पृहा च।
ईर्ष्या जुगुप्सा च मनुष्य दोषा वर्ज्या सदा द्वादशैते नराणाम्।। महाभारत

काम, क्रोध, मोह, लोभ, कुछ बिगाड़ने की इच्छा, क्रूरता, असूया, अभिमान, शोक, कामना, ईर्ष्या, घृणा ये 12 दोष मनुष्यों को छोड़ देने चाहिए।

जैन धर्म के आत्मानुशासन, परमात्मप्रकाश, समयसार आदि ग्रंथों में तथा उपनिषद में ख्याति, पूजा, प्रसिद्धि, लोकेष्णा लाभादि से दूर रहने के लिए आध्यात्मिक साधक को बार-बार संबोधित किया है, सचेत किया है। उपनिषद् में तो ख्याति आदि को शुकर विष्ठा कहा है। इसका रहस्य यह है कि जिस प्रकार शुकर विष्ठा मनुष्य की विष्ठा की विष्ठा होने के कारण घृणित है, त्यजनीय है उसी प्रकार ख्याति, प्रसिद्धि आदि घृणित है, त्यजनीय है। संसारी जीव भौतिक संपत्ति भोग आदि में लिप्त रहता है, परन्तु साधु तो बाह्यतः ये सब त्याग कर लिए है, परन्तु अंतरंग में जो राग-द्वेष-मान आदि कषायें हैं उनके त्याग के बिना ख्याति-पूजा आदि की भावना होती है और तद्नुकूल वे उसी प्रकार कार्य करने के लिए विवश होते हैं। इसलिए गृहस्थ बाह्य भौतिक साधनों के लिए जो कुछ आरंभ-समारंभ, लंद-फंद, संक्लेश, तेरा-मेरा,

आकर्षण-विकर्षणात्मक कार्य करता है उसी प्रकार साधुओं को भी करना पड़ता है भले बाह्यतः उसका रंग-रूप आकार-प्रकार कुछ भी हो अंतरंग स्वरूप एक परिग्रहधारी गृहस्थ के समान होता है। आध्यात्मिक ग्रंथों में कहा है-

'ख्याति पूजा लाभ रूप लावण्य सौभाग्य पुत्र कलत्र राज्यादि विभूति निमित्तं राग द्वेषपहतार्तरौद्र परिणत यदाराधनं करोति।'

अर्थात् जीव ख्याति (लोक में प्रसिद्धता) पूजा, लाभ, रूप, लावण्य, सौभाग्य, पुत्र, स्त्री, राज्यादि की संपदा को प्राप्त होने के लिए जो राग-द्वेष से युक्त आर्त्त-रौद्र ध्यान रूप परिणामों से सहित आराधना करता है वह यथार्थ से सम्यक्दृष्टि धार्मिक नहीं है भले इससे वह पापानुबंधी पुण्य बाँधकर उसके फलस्वरूप थोड़ा-सा सांसारिक वैभव आदि प्राप्त कर ले तथापि उसका परिणाम कटु ही होता है जैसा कि रावण, कंस, हिटलर, मुसोलिन, सिकंदर आदि प्रसिद्ध उदाहरण हैं। आध्यात्मिक ग्रंथों में कहा है ऐसे दूषित परिणामों से उपार्जित पुण्य पापानुबंधी पुण्य है। जिसके फलस्वरूप जीव उस पुण्य के फल से प्राप्त वैभव आदि से अहंकारी बन जाता है जिससे उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और बुद्धि भ्रष्ट होने पर भयंकर पाप करता है। यथा-पूर्वोक्त रावण आदि। जैनागमों में मद (अहंकार) करने वालों को भी अधार्मिक कहा है तथा जो इन मदों को त्याग करता है वही यथार्थ से सम्यग्दृष्टि, धार्मिक, त्यागी, साधक, साधु, संत है।

(1) विज्ञान (कला अथवा हुन्नर) का मद, (2) ऐश्वर्य (हुकूमत) का मद, (3) ज्ञान का मद, (4) तप का मद, (5) कुल का मद, (6) बल का मद, (7) जाति का मद, (8) रूप का मद।

इस प्रकार नामों के धारक जो 8 मद हैं इनका सराग सम्यक्दृष्टि को त्याग करना चाहिए और मान कषाय से उत्पन्न जो मद, मात्सर्य, ईर्ष्या आदि समस्त विकल्पों का समूह है इसके त्यागपूर्वक जो ममकार और अहंकार से रहित शुद्ध आत्मा में भावना है वही वीतराग सम्यग्दृष्टि के आठ मदों का त्याग है। कर्मों से उत्पन्न जो देह पुत्र, स्त्री आदि हैं इनमें यह मेरा शरीर है, यह मेरा पुत्र है इस प्रकार की जो बुद्धि है वह ममकार है और उन शरीर आदि में अपनी आत्मा से भेद न मानकर जो मैं गोरे वर्ण का हूँ, मोटे शरीर का धारक हूँ, राजा हूँ, मेरी प्रसिद्धि है, इस प्रकार मानना सो

अहंकार है।

अथ ख्याति पूजा लाभ दृष्ट श्रुतानुभूत भोगाकांक्षारूप निदान बंधादिसमस्त शुभाशुभ संकल्पविकल्पवर्जित शुद्धात्मा संवित्तलक्षण परमोपेक्षासंयमासाध्ये संवरव्याख्याने।

अर्थ-आगे संवर तत्त्व का व्याख्यान करते हैं, जो संवर अपनी प्रसिद्धि, पूजा, लाभ व देखे-सुने अनुभव हुए भोगों की इच्छा रूप निदान बंध आदि सर्व शुभ व अशुभ संकल्पों से रहित शुद्धात्मा के अनुभव लक्षणमई परम उपेक्षा संयम के द्वारा सिद्ध किया जाता है।

इन्दियकसायसण्णा णिग्गहिदा जेहिं सुट्ठु मग्गमि।
जावत्तावत्तेहिं पिहियं पावासवच्छिद्दं।। (141)

(जेहिं) जिससे (सुट्ठुमग्गम्मि) उत्तम रत्नत्रय मार्ग में ठहरकर (जावत्) जब तक (इन्द्रियकषायसण्णा) इन्द्रिय कषाय व चार आहारादि संज्ञाएँ (णिग्गहिदा) रोक दिए जाते है (तावत्) तब तक (तेहिं) उसके द्वारा (पावासवछिद्दं) पाप के आने का छेद (पिहियं) बंद कर दिया जाता है।

उपर्युक्त वर्णन से सिद्ध होता है कि जो क्रोधादि कषायों से आवेशित होकर या संकीर्ण तथा विपरीत उद्देश्यों से धार्मिक कार्य भी क्यूँ न करे उससे उसका पाप संवर नहीं होता है, पाप की निर्जरा भी नहीं होती है, पुण्यानुबंधी पुण्य का बंध नहीं होता है, भाव की पवित्रता नहीं होती है, मानसिक शांति नहीं मिलती है। दीर्घकाल तक जब तक वह धार्मिक कार्य पूर्ण नहीं होता है तब तक वह कार्य भी नहीं कर पाता है क्योंकि उसकी संकीर्ण भावना की संतुष्टि जब तक होती है तब तक तो वह धार्मिक कार्य को बाह्यतः ढोता रहेगा परन्तु जब उसके संकीर्ण विचारानुसार कार्य नहीं होगा तब वह उससे विक्षुब्ध हो जायेगा एवं उसको छोड़ देगा। जितने भी महापुरुष हुए हैं वे महान् उद्देश्य से ख्याति, पूजा, लाभ, प्रसिद्धि को छोड़कर विभिन्न बाधायें आने पर भी उन कार्यों को कर पाये क्योंकि उद्देश्य महान् पवित्र थे। इसी प्रकार वर्तमान और भविष्य में भी ऐसे ही व्यक्ति महान् कार्य कर सकते हैं।

वर्तमान में प्रभावना के नाम पर अधिकांश गृहस्थ, श्रावक, पंडित, ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी, साध्वी, साधु, उपाध्याय, आचार्य तक ख्याति, प्रसिद्धि (लोकेष्णा) लोक

संग्रह में ही लगे हुए हैं। जिसके कारण यथार्थ से स्व-पर की प्रभावना नहीं हो पा रही है।

छोटी-छोटी बातें जो जाहिर कर देती हैं अपरिपक्वता

व्यक्तित्व उम्र के साथ बदलता जाता है। लेकिन कई बार कुछ चीजें थम जाती हैं। इसके बारे में पता नहीं चलता। अपरिपक्वता बनी रहती है। जैसे किसी को लग सकता है कि प्रसिद्धि ज्यादा जरूरी है और इस चक्कर में वह ईमानदारी, प्रतिबद्धता और मौलिकता खो देता है। जैसे ही कोई मूल्यों पर प्रसिद्धि को तरजीह देता है वह खुद को सफलता से दूर कर लेता है। प्रसिद्धि से किसी को सोशल मीडिया पर तो अधिक लाइक मिल सकते हैं, लेकिन यह सफलता नहीं दिला सकते।

दरअसल प्रसिद्धि के लालच में व्यक्ति ऐसे दिखाने लगता है, जैसे वह सब कुछ जानता है। जबकि होता उल्टा है। जैसे-जैसे व्यक्ति परिपक्व होता जाता है उसे यह अहसास होने लगता है कि अभी बहुत कुछ ऐसा है जो उसे नहीं पता है। दरअसल परिपक्व लोग यह अच्छी तरह पहचान जाते हैं कि वे कुछ नहीं जानते हैं और बहुत कुछ समझना बाकी है। जब व्यक्ति यह सोचने लगता है कि वह सब जानता है तो अपनी गलती उसे नजर नहीं आती या वह अपनी कमियों के लिए बहाने तलाशने लगता है और उन्हें तर्कों से सही साबित करने की कोशिश करता है।

गलती नहीं मानना अपरिपक्वता जाहिर कर देता है। दूसरा इससे यह भी जाहिर होता है कि आप दूसरों की बात नहीं सुनना चाहते और अपनी कमियों का दोष दूसरों पर मढ़ने लगते हैं। इन सभी छोटी-छोटी बातों से व्यक्ति की अपरिपक्वता सामने आ जाती है। जिससे उसके प्रति धारणा बनती है। जो उसे सफलता से रोकती है।

धार्मिक-वैज्ञानिक दृष्टि से-

द्रव्य हिंसा से भी महान् हिंसा : परिग्रह

(परिग्रह से पाप से लेकर प्रदूषण-रोग-अकाल मरण-धन हानि)

(चाल : आत्मशक्ति....., भातुकली.....)

द्रव्य हिंसा से भी अधिक पाप होता है, परिग्रह रूपी हिंसा से।
द्रव्य हिंसा से न होता सभी ही पाप, सभी पाप होते है परिग्रह से।। (ध्रुव)

ऐसा ही सभी तीर्थंकरों ने कहा, आचार्यों ने ग्रंथों में वर्णन किया।
विश्व इतिहास भी साक्षी इसका, वैज्ञानिक शोध से मैंने ऐसा ही पाया।।

अंतरंग परिग्रह होते चौदह, क्रोध-मान-माया-लोभ व मोह।
स्त्री-पुरुष व नपुंसक वेद, हास्य-रति-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा।। (1)

बहिरंग, परिग्रह होते दशविध, क्षेत्र वास्तु हिरण्य व सुवर्ण धान्य।
दासी-दास-कुप्य-धन-भाण्ड, उत्तर भेद दोनों के होते अनेक विध।।

उक्त परिग्रह त्याग से द्रव्य हिंसा, अधिक न संभव यथा निस्पृह/(अपरिग्रही) साधु से।
परिग्रह त्याग प्रतिमाधारी उत्तम उदासीन युक्त श्रावक से।। (2)

यदि यह संभव नहीं है तो अवश्य पालनीय अपरिग्रह अणुव्रत।
इच्छा-लालसा-तृष्णा त्यागकर सीमित आवश्यकतानुसार रखे परिग्रह।।

गृहस्थों को भी परिवार पालन हेतु तथाहि दान-दयादत्ति के लिए।
जितना चाहिए परिग्रह उतना, उपार्जन करे न्याय नीति से।। (3)

अन्यथा तृष्णा रूपी अग्नि कभी न शांत होगी विश्व संपत्ति से।
लाभ से लोभ बढ़ता ऐसा उपदेश दिया है सभी तीर्थंकरों ने।।

अधिक से अधिक परिग्रह हेतु चाहिए अधिक से अधिक साधन।
व्यापार-उद्योग व यान-वाहन, फैक्ट्री खान-खनन व गृह-निर्माण।। (4)

यदि कोई माँसादि सेवन नहीं करता, नहीं करता है युद्धादि।
सप्त व्यसन भी न सेवन करता, तो भी परिग्रह से करे पापादि।।

वैज्ञानिक दृष्टि से व प्रायोगिक अनुभव से स्पष्ट होते हैं उक्त पाप।
विभिन्न प्रदूषण व तापमान वृद्धि में, परिग्रह पाप का अधिक योगदान।। (5)

इस हेतु ही काटे जाते है वृक्ष, तथाहि खोदे जाते हैं खान/(भूमि)।
जल-वायु-मृदा-विकिरण प्रदूषण, परिग्रह पाप ही प्रमुख कारण।।

इससे पशु-पक्षी-मछली-कीट-पतंग-मनुष्य तक होते रुग्ण।
पीड़ा भोगते अकाल में मरते, लाखों-करोड़ों से ले अनंत प्रमाण।। (6)

वायु प्रदूषण से ही पृथ्वीभर में एक वर्ष में मरते पच्चीस लाख मानव।

छत्तीस लाख करोड़ रुपयों की होती हानि, भोगने पड़ते कष्ट विभिन्न।।

ग्यारह लाख लोग तो भारत के मरते, विभिन्न रोग से हो संत्रस्त।

जन के साथ भी धन नष्ट होते, आयु-बुद्धि-क्षमता भी होती ह्रास।। (7)

प्रदूषण से भी भोजन सामग्रियों में, पोषक तत्त्व भी हो रहा है क्षीण।

भोजन भी हो रहा विषाक्त जिससे, होते रोग से ले मरण।।

इसलिए तो बहुआरंभ व परिग्रहधारी, भोग करते नरक के दुःख।

इन सब कारणों से चक्रवर्ती भी, परिग्रह त्यागकर बनते श्रमण।। (8)

किन्तु हाय हे! धार्मिक मन्यमाना भी, परिग्रह को नहीं मानते पाप।

परिग्रह पाप हेतु पंच पाप व क्रोध-मान-माया-लोभादि करते पाप।।

ऐसे पाप व पापी को भी ढोंगी साधु तक करते प्रशंसा व बहुमान।

जिससे वे स्वयं पापी बनते, पाप व पापी को करते प्रोत्साहन।। (9)

सादा जीवन व उच्च विचार युक्त, दान-दया-सेवा-परोपकार विधेय।

समता-शांति व स्वास्थ्य के लिए, अपरिग्रह व्रत पालनीय।।

तीर्थंकर-बुद्ध-महापुरुषों ने जो, मार्ग अपनाया व उपदेश दिया।

वैज्ञानिक भी (उसे) सही सिद्ध कर रहे, 'कनक' को अपरिग्रह भाया।। (10)

चितरी, दिनांक 12.11.2017, रात्रि 08.12

संदर्भ-

परिग्रह के भेद

अति-संक्षेपाद् द्विविधः स भवेदाभ्यन्तरश्च बाह्यश्च।
प्रथमश्चतुर्दश-विधो भवति द्विविधो द्वितीयस्तु।। (115)

Very briefly speaking, Parigraha is of two kinds, internal and external. The first is of 14 kinds, and the second is of two kinds.

व्याख्या-भावानुवाद-वह परिग्रह संक्षेप से दो प्रकार का है-(1) आभ्यंतर, (2) बाह्य। प्रथम आभ्यंतर परिग्रह के चौदह भेद हैं जिनका वर्णन आगे किया गया है। द्वितीय बाह्य परिग्रह दो प्रकार का है-एक चेतनात्मक व दूसरा अचेतनात्मक।

समीक्षा–बाह्य परिग्रह के प्रकारांतर से 10 भेद भी होते हैं जो कि निम्न प्रकार से हैं।

1. क्षेत्र-चावल आदि धान्यों की उत्पत्ति का स्थान, 2. वास्तु-आगार, भवन, घर, 3. हिरण्य-चाँदी आदि का व्यवहार। रजत के व्यवहार तंत्र को हिरण्य कहते है अथवा सोने के सिक्के आदि को भी हिरण्य कहते है, 4. सुवर्ण-व्यवहार में आने वाला सोना प्रसिद्ध (ज्ञात) ही है, 5. धान्य-चावल, गेहूँ, मूँग, तिल आदि, 6-7. दासीदास-नौकर, स्त्री-पुरुष वर्ग, 8. कुप्य-कपास एवं कोसे आदि का वस्त्र और चंदन आदि वस्तुएँ, 9. धन-गाय, बैल, अश्व आदि चतुष्पदि पशु समूह और 10. भाण्ड-पीतल, सुवर्ण, स्टील, लोह इत्यादि निर्मित भाजन समूह।

अंतरंग परिग्रह के 14 भेद

मिथ्यात्व-वेद रागास्तथैव हास्यादयश्च षट् दोषाः।
चत्वारश्च कषायाः चतुर्दशाऽभ्यन्तरा ग्रंथाः।। (116)

The fourteen internal possessions, attachments, are wrong belief, sexual inclinations, the six defects, laughter etc. and the four passions.

व्याख्या-भावानुवाद-चौदह प्रकार के परिग्रह होते हैं। यथा मिथ्यात्व जो कि सम्यक्त्व के विपरीत है, पुरुष-स्त्री-नपुंसक वेद, द्वेष के विपरीत राग उसी प्रकार हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा तथा क्रोध, मान, माया, लोभ रूपी कषाय इस प्रकार आभ्यंतर परिग्रह के 14 भेद होते हैं।

समीक्षा–आत्मा के शुद्ध परिणाम को छोड़कर समस्त सचित्त, अचित्त, मिश्र, द्रव्य तथा उनकी पर्याय परिग्रह के अंतर्गत है। इस श्लोक में अभ्यंतर वैभाविक परिणामों को अंतरंग परिग्रह कहा गया है। मुख्यतः इस श्लोक में आचार्यश्री ने दर्शन मोहनीय, कषाय मोहनीय तथा नौ कषाय मोहनीय को अभ्यंतर परिग्रह में गर्भित किया है।

सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, सम्यक्त्व मिथ्यात्व के भेद से दर्शन मोहनीय तीन प्रकार का है। कषाय और अकषाय के भेद से चारित्र मोहनीय के दो भेद है। हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद के भेद से अकषाय

वेदनीय नौ प्रकार की है। अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ और संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ ये कषाय वेदनीय के 16 भेद हैं।

दर्शन मोहनीय के तीन भेद हैं-सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यक्त्व मिथ्यात्व। यह दर्शन मोहनीय बंध की अपेक्षा एक होकर भी सत्ता कर्म की अपेक्षा तीन भेद को प्राप्त होती है अर्थात् बंध तो केवल मिथ्यात्व का ही होता है परन्तु सम्यग्दर्शन रूप घन की चोट लगने से उस मिथ्यात्व के तीन टुकड़े हो जाते है। अतः सत्ता की अपेक्षा तीन और बंध की अपेक्षा एक भेद होने वाली दर्शन मोहनीय है। जिस कर्म के उदय से प्राणी सर्वज्ञ प्रणीत मार्ग से पराङ्मुख, तत्त्वार्थ श्रद्धान में निरुत्सुक, हिताहित का विवेक करने में असमर्थ और मिथ्यादृष्टि होता है, वह मिथ्यात्व है। शुभ परिणामों से जब उसका अनुभाग रोग दिया जाता है और जो उदासीन रूप से स्थित रहकर आत्म-श्रद्धान को नहीं रोकता है, वह सम्यक्त्व कहलाता है। उस सम्यक्त्व का वेदन करने वाला जीव सम्यक्दृष्टि कहलाता है। वही मिथ्यात्व जब प्रक्षालन विशेष से क्षीणाक्षीण मदशक्ति वाले कोदों के समान आधा शुद्ध और आधा अशुद्ध रस वाला होता है तब वह मिश्र उभय या सम्यक्त्व मिथ्यात्व कहलाता है। जिसके उदय से आत्मा के आधे शुद्ध कोदों से जिस प्रकार का मद होता है उसी तरह के मिश्र भाव होते हैं।

चारित्र मोहनीय के दो भेद-कषाय और अकषाय के भेद से चारित्र मोहनीय के दो प्रकार का है। अकषाय का अर्थ कषाय का निषेध नहीं है अर्थात् इसमें 'अ' निषेध अर्थ में नहीं है, परन्तु 'ईषद्' किंचित् अर्थ में 'नञ्' समास है।

अकषाय वेदनीय के नौ भेद-हास्यादि के भेद से अकषाय वेदनीय नौ प्रकार की है।

(1) **हास्य कर्म**-जिसके उदय से हास्य का प्रादुर्भाव होता है वा हँसी आती है, हास्य कर्म है, (2) **रतिनामकर्म**-जिसके उदय से देशादि (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावादि) में उत्सुकता होती है, उनके प्रति अनुराग होता है वह रतिनाम कर्म है, (3) **अरति कषाय**-जिसके उदय से देशादि में अनुत्सुकता होती है, उनमें प्रीति नहीं होती है वह अरति कषाय है, (4) **शोक**-जिसके उदय से शोचन होता है, वह शोक है,

(5) **भय**-जिसके उदय से उद्वेग होता है, वा सात प्रकार का भय होता है, वह भय नोकषाय है, (6) **जुगुप्सा**-कुत्सा, ग्लानि को जुगुप्सा कहते है, यद्यपि जुगुप्सा कुत्सा का ही एक प्रकार है फिर भी कुछ अर्थ विशेष की उत्पत्ति होने से इनमें अंतर है। अपने दोषों को ढ़कना जुगुप्सा है, (7) **स्त्रीवेद**-जिस नो कषाय के उदय से कोमलता, अस्फुटता, क्लीवता, कामावेश, नेत्रविभ्रम, आस्फालन, पुरुष की इच्छा आदि स्त्री भावों को आत्मा प्राप्त होती है वह स्त्रीवेद है। जब स्त्रीवेद का उदय होता है तब इतर पुरुष और नपुंसकवेद कर्म की सत्ता गौण रूप से अवस्थित रहती है।

प्रश्न-लोक में योनि, मृदु स्तनादि चिह्न से स्त्रीवेद की प्रतीति होती है।

उत्तर-शरीर में जो स्तन, योनि आदि चिह्न है वे नामकर्म के उदय के कारण होते हैं। अतः द्रव्य से पुरुषवेद का उदय होने पर भी भाव से स्त्रीवेद का वा नपुंसकवेद का उदय हो सकता है। द्रव्य स्त्रीवेद के उदय में भाव पुरुष या नपुंसक का तथा द्रव्य से नपुंसकवेद का उदय होने पर भी आभ्यंतर विशेष भाव की अपेक्षा पुरुष और स्त्रीवेद का उदय हो सकता है। शरीर आकार तो नामकर्म की रचना है और भाववेद मोहनीय कर्म के उदय से होता है, इस प्रकार इन दोनों का वर्णन है।

(8) **पुरुषवेद**-जिस कर्म के उदय से आत्मा पुरुष भाव को प्राप्त होता है वह पुरुषवेद है, (9) **नपुंसकवेद**-जिस कर्म के उदय से नपुंसक भावों को प्राप्त होता है, यह नपुंसक वेद है।

कषाय वेदनीय सोलह प्रकार की है-क्रोध, मान, माया और लोभ के भेद से कषाय चार प्रकार की है।

(1) क्रोध-अपने और पर के उपघात अनुपकार आदि से आहित (प्राप्त) क्रूर परिणाम या अमर्ष भाव क्रोध है। यह क्रोध पर्वत रेखा, पृथ्वी रेखा, धूलि रेखा और जल रेखा के समान चार प्रकार का है।

(2) मान-जाति, ज्ञान, कुल, शरीर, तप, पूजा, ऐश्वर्य आदि के मद के कारण दूसरों के प्रति नमने की वृत्ति नहीं होना मान कषाय है। यह मान शैल स्तंभ, अस्थि स्तंभ, दारू (लकड़ी) स्तंभ और लता समान भेद से चार प्रकार का है।

(3) माया-दूसरों को ठगने के लिए जो छल, कपट और कुटिल भाव होते है वह माया है। यह माया, बाँस वृक्ष की गँठीली जड़, मेष (मेढ़े) की सींग, गाय के

मूत्र रेखा और अवलेखनी खुरपा आदि के सदृश चार प्रकार की है।

(4) लोभ-जीव के अनुग्राहक-उपकारक धन आदि की विशेष आकांक्षा लोभ है। कृमीराग, कज्जल, कर्दम (कीचड़) और हरिद्रा (हल्दी) के राग सदृश भेद से लोभ, चार प्रकार का है। इन क्रोध, मान, माया और लोभ की चार-चार अवस्थाएँ हैं। अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ और संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ।

1. **अनंतानुबंधी**-अनंत संसार का कारण होने से मिथ्यादर्शन को अनंत कहते हैं। उस अनंत (मिथ्यात्व) को बाँधने वाली (वा उसका अनुसरण करने वाली) कषाय अनंतानुबंधी कहलाती है अर्थात् मिथ्यादर्शन को बाँधने वाले क्रोध, मान, माया और लोभ अनंतानुबंधी है।

2. **अप्रत्याख्यानावरण**-जिसके उदय से यह प्राणी ईषत् (अल्प) भी देशविरत संयमासंयम नामक व्रत को स्वीकार नहीं कर सकता, स्वल्प मात्र भी व्रत प्राप्त नहीं कर सकता वह देशविरत प्रत्याख्यान का आवरण करने वाली अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ कषाय है।

3. **प्रत्याख्यानावरण**-जिसके उदय से सकल विरति और सकल संयम को धारण नहीं कर सकता, वह समस्त प्रत्याख्यान-सर्व त्याग को रोकने वाली कषाय प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ है।

4. **संज्वलन**-जो 'सम' अर्थात् एकीभाव से संयम के साथ सहावस्थान होने से एकीभूत होकर जलती रहे अथवा जिसके रहने पर भी संयम हो सकता है, वह संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ कषाय है। इस प्रकार इनका समुदाय करने पर 16 कषाय होती है।

बाह्य परिग्रह के भेद

अथ निश्चित्त सचित्तौ, बाह्यस्य परिग्रहस्य भेदौ द्वौ।
नैषः कदाचित्संगः, सर्वोप्यतिवर्त्तते हिंसाम्।। (117)

External Parigraha is of two kinds with reference to living and non-living objects. All this Parigraha never excluedes Himsa.

व्याख्या-भावानुवाद-बाह्य परिग्रह दो प्रकार का है। उस परिग्रह के दो भेद

हैं। वे हैं (1) अचेतन परिग्रह (2) सचेतन परिग्रह। जिस प्रकार आभ्यंतर परिग्रह हिंसा के लिए कारण है उसी प्रकार बाह्य परिग्रह भी कदाचित् हिंसा के लिए कारण होता है। जब बाह्य परिग्रह प्रमत्त योग से सहित होता है क्योंकि प्रमत्त योग से प्राण व्यपरोपण रूप हिंसा का उल्लंघन नहीं होता है। भावार्थ यह है कि स्त्री, पशु, दास-दासी आदि चेतन परिग्रह तथा धन-धान्य आदि अचेतन परिग्रह में निश्चित रूप से हिंसा होती ही है।

परिग्रह की सत्ता असत्ता में हिंसा-अहिंसा

उभय-परिग्रह-वर्जनमाचार्याः सूचयत्यहिंसेति।
द्विविध-परिग्रह वहनं, हिंसेति जिन-प्रवचनज्ञाः।। (118)

The Acharyas (preceptor saints), who are well versed in Jain philosophy, call the renunciation of Parigraha of both sorts as Ahimsa, and the appropriation of Parigraha of two sorts as Himsa.

व्याख्या-भावानुवाद-जिन प्रवचन को जानने वाले पंचाचार परायण आचार्य दोनों प्रकार के परिग्रह को ग्रहण करना हिंसा कहा है तथा दोनों प्रकार के परिग्रहों का त्याग अहिंसा कहा है।

हवदि व ण हवदि बंधो मदम्हि जीवेऽध कायचेट्ठम्हि।
बंधो धुवमुबधीदो इदि समणा छड्डिया सव्वं।। (219) प्र.सार

(कायचेट्ठम्मि) शरीर से हलन-चलन आदि क्रिया के होते हुए (जीवमदे) किसी जन्तु के मर जाने पर (हि) निश्चय से (बांधो हवदि) कर्मबंध होता है (वा ण हविद) अथवा नहीं होता है (अध) परन्तु (उवधीदो) परिग्रह के निमित्त से (बंधो धुवं) बंध निश्चय से होता ही है (इदि) इसीलिये (समणा) साधुओं ने (सव्व) सर्व परिग्रह को (छड्डिया) छोड़ दिया।

साधुओं ने व महाश्रमण सर्वज्ञों ने पहले दीक्षाकाल में शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव मई अपनी आत्मा को ही परिग्रह मानकर शेष सर्व बाह्य-अभ्यंतर परिग्रह को छोड़ दिया ऐसा जानकर के अन्य साधुओं को भी अपने परमात्म स्वभाव को ही अपना परिग्रह स्वीकार करके शेष सर्व ही परिग्रह को मन, वचन, काय और कृत, कारित

अनुमोदना से त्याग देना चाहिए। यहाँ यह कहा गया है कि शुद्ध चैतन्य रूप निश्चय प्राण का घात जब राग-द्वेष आदि परिणामरूप निश्चय हिंसा से किया जाता है तब नियम से बंध होता है। पर जीव के घात हो जाने पर बंध हो वा न भी हो, नियम नहीं है, किन्तु परद्रव्य में ममतारूप मूर्च्छा परिग्रह से तो नियम से बंध होता ही है।

इस गाथा में आचार्य कुंदकुंद भगवंत ने एक महान् आध्यात्मिक रहस्य का उद्घाटन किया है। शांत, स्वाभाविक, शुद्ध स्वभाव का हनन जिन राग, द्वेष, मोह, ममत्व, इच्छादि भावों से होता है उसे ही निश्चय से हिंसा कहते है अर्थात् वैभाविक भाव ही हिंसा है एवं स्वभाव ही अहिंसा है। वैभाविक भावों से रहित जीव की काय की क्रिया से यदि कोई जीव मर जाता है तथापि उसे हिंसा का दोष नहीं लगेगा। इसलिये द्रव्य-हिंसक, भाव-अहिंसक हो सकता है, परन्तु जो बाह्य परिग्रहधारी है वह अवश्य अंतरंग परिग्रहधारी है। क्योंकि बिना अंतरंग के मोह, ममत्व, तृष्णा, लोभ के बाह्य परिग्रह को नहीं स्वीकार कर सकता है और मोह, ममत्वादि ही यथार्थ से हिंसा है। इसलिये परिग्रहधारी अवश्य हिंसक है और उसे कर्मबंध होता है। परन्तु द्रव्य-हिंसक कथंचित् अहिंसक होने से उसे कर्मबंध नहीं होता है। इस दृष्टि से हिंसक से भी महाहिंसक परिग्रहधारी है। इसलिये अमृतचंद सूरि ने इस गाथा की टीका में कहा है कि परिग्रह सर्वथा अशुद्धोपयोग के बिना नहीं होता है, ऐसा जो परिग्रह का सर्वथा अशुद्धोपयोग के साथ अविनाभाविपना है। उससे प्रसिद्ध होने वाले निश्चय अशुद्धोपयोग के सद्भाव के कारण परिग्रह से तो बंध निश्चित है। इसलिये अभी तक जितने भगवान् बने पहले वे परिग्रह को त्यागकर के ही अहिंसक बने। समंतभद्र स्वामी ने कहा भी है-

अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्मपरमं।
न सा तत्रारम्भोऽस्त्यणुरपि च यत्राश्रमविधौ।।
ततस्तत्सिद्ध्यर्थं परमकरुणो ग्रन्थमुभयं।
भवानेवात्याक्षीन्न च विकृतवेषोपधिरतः।। (4) पृ.132 स्वयंभू.

हे भगवन्! प्राणियों की अहिंसा जगत् में परम ब्रह्म रूप से प्रसिद्ध है अर्थात् अहिंसा ही परम ब्रह्म है परन्तु वह अहिंसा उस आश्रय विधि में नहीं है जिसमें थोड़ा भी आरंभ होता है। इसलिये उस अहिंसा धर्म को सिद्धि के लिए परम दयालु होकर

आपने ही बाह्य और अभ्यंतर दोनों प्रकार के परिग्रह को छोड़ा है और यथाजात-लिंग के विरोधी वेष तथा परिग्रह से आसक्त नहीं हुए हैं।

अंतरंग एवं बहिरंग परिग्रह पर स्वरूप है। जहाँ पर संयोग है, वहाँ बंध है जहाँ बंध है वहाँ दुःख ही दुःख है। इसलिये मुमुक्षु परिग्रह को दुष्टग्रह, ग्राह (मगरमच्छ) से भी अधिक दुःखदायी मानकर त्याग कर देते हैं। पूज्यपाद स्वामी ने कहा भी है-

परः परस्ततो दुःखमात्मैवात्मा ततः सुखं।
अत एव महात्मानस्तन्निमित्तं कृतोद्यमाः।। (45) पृ.209 इष्टोपदेश

देहादि पर पदार्थ तो पर ही है उन्हें अपना मानने से दुःख होता है किन्तु आत्मा, आत्मा ही है-आत्मा पदार्थ अपना है। वह अपना ही रहेगा वह कदाचित् भी देहादि रूप नहीं हो सकता-उसे अपनाने से सुख प्राप्त होता है। इसीलिये तीर्थंकरादि महापुरुषों ने आत्मा के लिए ही उद्योग किया है-विविध घोर तपश्चरण के अनुष्ठान द्वारा आत्म तत्त्व की प्राप्ति की है।

अविद्वान् पुद्गल द्रव्य योऽभिनन्दति तस्य तत्।
न जातु जंतोः सामीप्यं चतुर्गतिषु मुञ्चति।। (46)

अज्ञानी जीव पुद्गल द्रव्य को अपना मानता है अतएव पुद्गल द्रव्य चारों गतियों में आत्मा का संबंध नहीं छोड़ता-वह बराबर साथ बना रहता है।

परिग्रह बहुत बड़ी हिंसा एवं बहुत बड़ा पाप होने पर भी आज स्वयं को जैन धर्मावलंबी मानने वाले आनुसंगिक द्रव्य हिंसा को तो बहुत बड़ा पाप मानते हैं, परन्तु परिग्रह को हिंसा या पाप नहीं मानते हैं वे परिग्रह को तो पुण्य मानते हैं, शान, स्वाभिमान की वस्तु मानते हैं, जो अन्यायपूर्ण प्रणाली से यथा-मिलावट, शोषण, ठगबाजी, धोखाधड़ी आदि से भी धन कमाकर धन्नासेठ बन जाते हैं, उसे लोग पुण्यशाली धार्मिक मानते हैं और उसके अनैतिकपूर्ण, अन्यायपूर्ण, अधार्मिक व्यवहार को भी भय के कारण सहन करते हैं परन्तु प्रतिवाद नहीं करते, निराकरण नहीं करते हैं। कुछ व्यक्ति दानादि करके अपना नाम कमाने के लिए, अहंकार की पुष्टि के लिए अन्याय से भी धन कमाते हैं और इस अन्यायपूर्ण धन ये यद्किंचित् दान देकर स्वयं को धार्मिक एवं दानी मानते हैं। इतना ही नहीं, इस दान के पीछे सेलेटेक्स चोरी, इंकमटेक्स चोरी समाज के ऊपर प्रभाव डालना, अपना वर्चस्व कायम करना आदि

कुभावना भी निहित रहती है। हमारे आचार्यों ने यहाँ तक कहा है कि दान देने के लिए भी धन कमाना मानो स्नान करके शरीर को स्वच्छ करने के बहाने से शरीर को मल से लिप्त करना है। यथा-

त्यागाय श्रेयसे वित्तमवितः संचिनोतियः।

स्वशरीरं स पङ्केन स्नास्यामीति विलिम्पति।। (16) पृ.18 इष्टोपदेश

जो निर्धनी पुरुष, पुण्य प्राप्ति होगी ऐसा विचार कर दान करने के लिए धन कमाता या जोड़ता है, वह स्नान कर लूँगा ऐसे ख्याल से अपने शरीर को कीचड़ से लपेटता है। जो निर्धनी ऐसा ख्याल करे कि पात्रदान, देवपूजा आदि करने से नवीन पुण्य की प्राप्ति और पूर्वोपार्जित पाप की हानि होगी, इसलिये पात्रदानादि करने के लिए धन कमाना चाहिए, नौकरी खेती आदि करके धन कमाता है, समझना चाहिए कि वह स्नान कर डालूँगा ऐसा विचार कर अपने शरीर को कीचड़ से लिप्त करता है। खुलासा यह है कि जैसे कोई आदमी अपने निर्मल अंग को स्नान कर लूँगा का ख्याल कर कीचड़ से लिप्त कर डाले तो वह बेवकूफ ही गिना जायेगा। उसी तरह पाप के द्वारा पहले धन कमा लिया जाये, पीछे पात्रदानादि के पुण्य से उसे नष्ट कर डालूँगा ऐसे ख्याल से धन के कमाने में लगा हुआ व्यक्ति को भी समझना चाहिए। संस्कृत टीका में यह भी लिखा है कि चक्रवर्ती आदिकों की तरह जिसको बिना यत्न किये हुए धन की प्राप्ति हो जाये तो वह उस धन से कल्याण के लिए पात्रदानादि करे तो करे। फिर किसी को भी धन का उपार्जन शुद्ध वृत्ति से हो भी नहीं सकता जैसा कि श्री गुणभद्राचार्य ने आत्मानुशासन में कहा भी है-

''शुद्धेर्धनैविवर्धन्ते, सतामपि न संपदः।

न हि स्वच्छाम्बुभिः पूर्णाः कदाचिदपि सिन्धवः।।''

''सत्पुरुषों की संपत्तियाँ, शुद्ध ही शुद्ध धन से बढ़ती हैं, यह बात नहीं है। देखो नदियाँ स्वच्छ जल से ही परिपूर्ण नहीं हुआ करती हैं। वर्षा में गंदले पानी से भी भरी रहती हैं।''

कोई प्रश्न कर सकता है कि फिर श्रावक को दानादि में भी धन खर्च नहीं करना चाहिए यह भाव निकलता है? परन्तु रहस्य यह है कि परिग्रह पाप है और परिग्रहधारी हिंसक है इसलिये समग्रता से संपूर्ण परिग्रह त्याग करना चाहिए। यदि

संपूर्ण त्याग नहीं कर पाता है तो परिग्रह अणुव्रत को धारण करे। इस अणुव्रत में भी जो पाप संचय होता है इसके साथ अन्य-अन्य गृहस्थ संबंधी पाप को कम करने के लिए निर्लोभता से, त्याग को बढ़ाने के लिए न्याय से कमाये धन से यथाशक्ति ज्ञान, औषधि आहारादि दान दें। यदि परिग्रहधारी होकर भी दानादि नहीं करता है तो और भी महान् पापी है, लोभी है। दान से हिंसा स्वरूप लोभ को निरसन किया जाता है और जो दान नहीं देता है वह लोभरूपी हिंसा को करता है।

बढ़ता पर्यावरण प्रदूषण : विकट चुनौती

-अनीता मोदी

विश्व में बढ़ते प्रदूषण के प्रति आगाह करते हुए हाल ही में प्रकाशित लैसिट की रिपोर्ट में बताया गया है कि संपूर्ण विश्व में प्रदूषण के कारण मौतों का आँकड़ा बढ़ता जा रहा है जिसको नियंत्रित करना अत्यावश्यक है। इस रिपोर्ट में बताया है कि भारत में लगभग 25 लाख लोग वर्ष 2015 में प्रदूषण जनित बीमारियों की वजह से काल का ग्रास बन गये। इसी क्रम में अमेरिकन संस्था हैल्थ इफेक्ट्स इंस्टीट्यूट ने भी अपने शोध के आधार पर स्पष्ट किया है कि वर्ष 2015 में विश्व में वायु प्रदूषण के कारण लगभग 42 लाख लोग अकाल मौत के शिकार हो गये उनमें से करीब 11-11 लाख लोग भारत व चीन के है।

तीव्र आर्थिक विकास के लिए अनियंत्रित रूप से प्राकृतिक संसाधनों के विदोहन, औद्योगिक क्रांति, द्रूतगामी परिवहन साधनों व बढ़ते मशीनीकरण के कारण आज संपूर्ण विश्व पर्यावरण संकट जैसी ज्वलंत समस्या से जूझ रहा है। विश्व में बढ़ते पर्यावरण संकट का अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि विश्व की लगभग एक चौथाई जमीन बंजर हो चुकी है और ऐसा अनुमान है कि आगामी कुछ वर्षों में सूखा प्रभावित क्षेत्र की लगभग 70 प्रतिशत जमीन बंजर हो जायेगी, जिससे विश्व के सौ देशों की एक अरब से अधिक जनसंख्या के जीवन अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लग जायेगा।

विश्व में बढ़ते प्रदूषण के प्रति आगाह करते हुए हाल ही में प्रकाशित लैसिट की

रिपोर्ट में बताया गया है कि संपूर्ण विश्व में प्रदूषण के कारण मौतों का आँकड़ा बढ़ता जा रहा है जिसको नियंत्रित करना अत्यावश्यक है। इस रिपोर्ट में बताया है कि भारत में लगभग 25 लाख लोग वर्ष 2015 में प्रदूषण जनित बीमारियों की वजह से काल का ग्रास बन गये। इसी क्रम में अमेरिकन संस्था हैल्थ इफेक्ट्स इंस्टीट्यूट ने भी अपने शोध के आधार पर स्पष्ट किया है कि वर्ष 2015 में विश्व में वायु प्रदूषण के कारण लगभग 42 लाख लोग अकाल मौत के शिकार हो गये उनमें से करीब 11-11 लाख लोग भारत व चीन के है।

पर्यावरण पर बढ़ते संकट की झलक समुद्र के बढ़ते जलस्तर, जैव विविधता में ह्रास, पृथ्वी के बढ़ते तापमान के रूप में देखी जा सकती है। पर्यावरण असंतुलन की वजह से मानव, पशु-पक्षी और वनस्पति का जीवन संकट में है। कुछ दुर्लभ प्रजातियाँ नष्ट हो चुकी हैं, कुछ लुप्त होने के कगार पर है। प्राकृतिक प्रकोपों यथा बाढ़, सूखा, तूफान व सुनामी की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही हैं।

विश्व में बढ़ते पर्यावरण संकट के लिए अनेक कारक उत्तरदायी है। यह सर्वविदित तथ्य है कि कृषि और पर्यावरण परस्पर पूरक है। कृषि उत्पादन बढ़ाने हेतु आधुनिक एवं उन्नत तकनीक के अंतर्गत रासायनिक उर्वरकों, कीटाणुनाशकों, ट्रेक्टरों, पंपसेटों व अन्य मशीनों तथा सिंचाई साधनों के अधिकाधिक उपयोग को प्रोत्साहित किया गया। इस सबके परिणामस्वरूप पर्यावरण संबंधी समस्याएँ निरंतर बढ़ती गईं। मिट्टी की उर्वरा शक्ति में ह्रास होने से भूमि बंजर होती जा रही है, खाद्य सुरक्षा पर खतरे के बादल मंडरा रहे है, जल संकट एवं जल प्रदूषण की त्रासदी से संपूर्ण विश्व आहत है। इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए विश्व पर्यावरण और विकास आयोग ने अपनी रिपोर्ट में यह तथ्य रेखांकित किया है कि आर्थिक विकास और नई तकनीकों को पर्यावरण समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में देखना होगा।... ऐसी कृषि प्रणालियों के विकास पर बल देना चाहिए ताकि हवा, पानी और मिट्टी को बिगाड़े बिना खेती की उत्पादकता को बनाये रख सकें।

इसी क्रम में, तीव्र गति से अनवरत जारी उत्खनन कार्य ने विश्व के पर्यावरण को खतरे में डाल दिया है। ग्रेनाइट, संगमरमर, बहुमूल्य धातुओं, कोयले, पेट्रोलियम पदार्थ, ताँबा, एल्यूमीनियम, प्राकृतिक गैसें आदि को प्राप्त करने के लिए धरती को

निरंतर खोदा जा रहा है, जिसके कारण धरती खोखली होती जा रही है। भू-जल के अनियंत्रित निष्कासन के कारण ही गंगा-यमुना जैसे मैदानी इलाकों को छोड़कर संपूर्ण देश में भू-जल के स्तर में तीव्र गिरावट दर्ज की गई है। इस प्रकार से विकास की इस अंधी दौड़ में, मानव विकास की अपेक्षा विनाश करने पर तुला है।

पर्यावरण पर मंडराते संकट के बादल हमारी वर्तमान जीवनशैली के परिणाम है। यदि ऐसा कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। उच्च जीवन स्तर की अभिलाषा में 'उपभोक्तावादी संस्कृति' को उच्च प्राथमिकता देते हुए मानव प्राकृतिक संसाधनों का अतिदोहन अनियंत्रित रूप से कर रहा है। मानव की इस प्रवृत्ति के कारण ही जल, जमीन व जंगल का विनाश अनवरत जारी है, जिसका परिणाम है कि पर्यावरण संकट चरम सीमा पर पहुँच गया है।

विश्व में बढ़ते औद्योगिकरण ने पर्यावरण को अपूरणीय क्षति पहुँचाई है। औद्योगिक इकाइयों की धुआँ निकलती चिमनियाँ, उद्योगों से निसृत जहरीले अवशिष्ट पदार्थ एवं प्रदूषित जल तथा मशीनों के लिए ऊर्जा पर बढ़ती निर्भरता पर्यावरण के लिए घातक सिद्ध हो रहे है। बढ़ता अंतर्राष्ट्रीय तनाव, संघर्ष व युद्ध भी बढ़ते पर्यावरण संकट के लिए जिम्मेदार है। ज्ञातव्य है कि इराक व कुवैत के युद्ध के दौरान सागर में फैले विशाल तेल से न केवल समुद्रीय पर्यावरण तंत्र पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा वरन् लाखों लोगों की जीवनलीला खत्म हो गई। समुद्रों में बढ़ते प्रदूषण के कारण समुद्री जीवों का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है।

अफसोस की बात है कि अनेक नियमों, कानूनों व कार्यक्रमों के बावजूद विश्व में पर्यावरण प्रदूषण की मात्रा घटने की अपेक्षा निरंतर तेजी से बढ़ती जा रही है। इस वैश्विक समस्या के समाधान हेतु शीघ्र प्रभावी प्रयासों की नितांत आवश्यकता है। सर्वप्रथम, विश्व के समस्त देशों को विकास की अंधी दौड़ में प्राकृतिक संसाधनों के अनियंत्रित दोहन पर रोक लगानी जरूरी है। 'इकोलोजी' एवं 'इकोनोमी' की पारस्परिक निर्भरता एवं पूरकता को दृष्टिगत रखते हुए विश्व के देशों को धारणक्षम विकास प्रक्रिया पर ही अग्रसर होना चाहिए। पर्यावरण प्रदूषण के विविध खतरों का जनक स्वयं मानव है। अतः इनके निवारण हेतु समय रहते संपूर्ण विश्व को सामूहिक रूप से, समन्वित ढंग से प्रयास करना होगा। मानव प्रकृति के साथ मित्रवत् एवं संवेदनापूर्ण

व्यवहार करें, प्राकृतिक संसाधनों का अनियंत्रित एवं अविवेकपूर्ण ढंग से दोहन नहीं करे अपितु इन संसाधनों को भावी पीढ़ी के लिए भी सहेजकर सुरक्षित रखें। हमें ऐसी व्यवस्था के विकास को प्राथमिकता प्रदान करनी होगी जिसमें मानव आवश्यकताओं और संसाधनों के मध्य सदैव संतुलन एवं समायोजन स्थापित किया जा सकें। इन सब कार्यों को परिपूर्ण करने के लिए नैचर क्लबों, नैचर कैम्पों आदि को संगठित किया जाये, पर्यावरण संरक्षण से संबंधित विभिन्न कार्यक्रमों को विविध स्तरों पर आयोजित किया जाये ताकि आम नागरिक भी पर्यावरण संरक्षण के यज्ञ में अपनी आहूति दे सके तथा शुद्ध पर्यावरण की प्राप्ति संभव हो सकें।

वायु प्रदूषण के कारण भारत में बढ़ी मौतों की संख्या

बढ़ता प्रदूषण भारत समेत पूरी दुनिया के लिए चिंता का सबब बन चुका है। ग्लोबल रिसर्च स्टडी में इस बात की ओर इशारा किया गया है कि भारत में 2015 में करीब 5.2 लाख लोग वायु प्रदूषण के कारण समय से पहले ही काल के गाल में समा गये। सोमवार को लंदन में द लौन्सट काउंटडाऊन 2017 नाम से जारी इस रिसर्च रिपोर्ट में इस बात की ओर संकेत हैं कि ठोस ईंधन और औद्योगिक तथा कोयले से चलने वाले पावर प्लांट के कारण होने वाले प्रदूषण से असामयिक मौतों की संख्या बढ़ रही हैं।

विभिन्न क्लाइमेट चेंज मानकों का अध्ययन करने वाले लौन्सट के प्रदूषण का मानव शरीर पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव का आँकड़ा जारी किया है। रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत में 2000-2016 के बीच लू के समय में भी बढ़ोतरी हुई है। लौन्सट ने भारत आधारित ब्यौरा जारी करते हुए कहा है कि इस दौरान 65 साल से ऊपर व्यक्ति को लू के प्रकोप का सामना करना पड़ा, जो काफी ज्यादा था। 1986-2008 के दौरान चलने वाली लू और अभी के लू औसत में भी दबाव आया है। 2000-2016 के दौरान लू की समय सीमा भी 3 से 9 दिन ज्यादा रही। वायु प्रदूषण से होने वाली मौतों के मामले में भारत दक्षिण एवं दक्षिण-पूर्व एशियाई राष्ट्रों में चीन के बाद दूसरे नंबर पर है।

सभी महाद्वीप में स्थित 24 एकेडेमिक संस्थानों द्वारा किये गये इस रिसर्च में

बताया गया है कि वायु प्रदूषण के कारण होने वाली करीब 5.2 लाख मौतों में से लगभग 1.2 लाख लोग घरेलू वायु प्रदूषण के कारण समय से पहले मर जाते हैं। प्राकृतिक स्रोतों से होने वाली मौतों का आँकड़ा करीब 97 हजार है।

पूरी दुनिया में 87 हजार वायु प्रदूषण के नियमों का उल्लंघन कर रहे हैं। बढ़ती गर्मी के कारण डेंगू के विषाणुओं के 1990 के बाद पहली बार दो तरह के मच्छरों में बदलने की आशंका बढ़ रही है। भारत में 2015 में डेंगू के कारण 3792 लोग मारे गये थे। पर्यावरण में बदलाव हो रहा है और पूरी दुनिया में इससे स्वास्थ्य संबंधी मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा है। लौन्सट काउंटडाउन के को-चेयर और डायरेक्टर प्रोफेसर एंथनी कोस्टी लो ने कहा कि वायु प्रदूषण की बढ़ती मुश्किलों से निपटने के लिए सभी को ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन कम करना होगा। अगर ऐसा नहीं किया जाता है तो बड़े पैमाने पर लोगों की जान जा सकती है।

रिपोर्ट पर प्रतिक्रिया जताते हुए सेंटर फॉर साइंस एंड एंवायरमेंट की कार्यकारी निदेशक और वायु प्रदूषण विशेषज्ञ अनुमिता रॉय चौधरी ने कहा कि यह शर्मनाक है कि दशकों के बाद वायु क्वालिटी मैनेजमेंट और ठोस ईंधन के प्रयोग में कमी नहीं आई है।

भारतीय आहार में कम होने लगे पोषक तत्त्व

अगर आपको लगता है कि आप पोषक तत्त्वों से भरपूर खाद्य पदार्थ खाते हैं और इससे सेहतमंद और बीमारियों से मुक्त रहेंगे, तो फिर से सोचिये। हो सकता है कि आपका अनाज और आहार उतना पौष्टिक ही न हो जितना आप उसे समझते हैं। नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ न्यूट्रिशन के हालिया डाटा में दावा किया गया है तीन दशक पहले की तुलना में हमारे आहार में पोषक तत्त्व कम होते जा रहे हैं।

फल-सब्जी-फल-सब्जी की स्थिति भी अच्छी नहीं है। सेब में आयरन 60 फीसदी घट गया है। वही टमाटर में विटामिन-बी, आयर और जिंक 66 से 73 फीसदी घट गया है। हालाँकि मसूर, मूँग, पालक में माइक्रोन्यूट्रिशन बढ़ गये हैं। वही आलू में आयरन बढ़ा है, लेकिन विटामिन-बी, मैग्नीशियम और जिंग में गिरावट आई है।

खाद्य पदार्थों का अध्ययन-इस शोध के लिए 528 खाद्य में मौजूद 151 पोषक तत्त्वों का विश्लेषण किया गया। इसके लिए देश के छह भौगोलिक क्षेत्रों से सैंपल लिये गये। इसके बाद 1989 में इन पदार्थों में पाये गये पोषक तत्त्वों से उनकी तुलना की गई। पाया गया कि सभी तरह के खाद्य पदार्थों में पोषक तत्त्व लगातार घट रहे हैं।

किस आहार में कितना-बाजरा 8.5 फीसदी कम हुआ कार्बोहाइड्रेट, गेहूँ-कार्बोहाइड्रेट में 9 फीसदी की गिरावट, मसूर-10.4 फीसदी कम हुआ प्रोटीन, मूँग-6.12 फीसदी कम हुआ प्रोटीन।

मिट्टी में कमी का असर-विशेषज्ञों के मुताबिक भारतीय मिट्टी में पोषक तत्त्व कम हो रहे हैं, जिससे इसमें उगने वाले अनाज-सब्जी और फल के पोषक तत्त्वों में भी गिरावट आ रही हैं। जैसे मिट्टी में जिंक 43, बोरान 18.3, आयरन 12.1, मैग्नीशियम 5.6 और कॉपर 5.4 फीसदी कम हो गया है।

हरी सब्जी चिचिण्डा में 78 फीसदी और चावल में 16.76 फीसदी प्रोटीन का स्तर बढ़ गया है। हालाँकि ये आहार प्रोटीन के लिए नहीं खाये जाते इसलिये इनकी अधिकता से शारीरिक जरूरतें पूरी नहीं हो पाती हैं।

भारतीय भोजन में पोषण की गुणवत्ता सुधारने की जरूरत

स्वास्थ्य पत्रिका लैनसेट ने 'बीमारियों के वैश्विक बोझ' शीर्षक से 2016 के संस्करण में भारत के बारे में जो रिपोर्ट जारी की है उसमें पोषक तत्त्वों की कमी और टीबी जैसी बीमारी का बोझ भारी है। प्रोटीन, विटामिन और आयरन जैसे पोषक तत्त्वों की कमी से भारत के 46 प्रतिशत लोग जूझ रहे हैं और 2007 से 2016 के बीच इस कमी में तकरीबन 8 प्रतिशत का इजाफा हुआ है। इसके साथ दूसरे नंबर पर चिंताजनक स्थिति टीबी की है। इस बीमारी से 39 प्रतिशत आबादी ग्रसित है और इसमें पिछले एक दशक के भीतर 20 प्रतिशत बढ़ोतरी हुई है। बाकी कैंसर, अस्थमा, हृदय रोग और मधुमेह की चर्चाएँ बहुत हैं और उन पर स्वास्थ्य सेवाओं का पर्याप्त जोर होने के बावजूद उनसे प्रभावित नागरिकों की तादाद अपेक्षाकृत कम है। इस पत्रिका के आँकड़ों के अनुसार दिल की बीमारी से प्रभावित लोगों की संख्या 5.5

और मधुमेह पीड़ित 6.5 करोड़ हैं। संभव है दूसरे सर्वेक्षण इन आँकड़ों पर प्रतिवाद करे लेकिन, लैनसेट ने इन आँकड़ों को सिएटल के इंस्टीट्यूट ऑफ हेल्थ मैट्रिक्स एंड एवैलुएशन से लिए है और वे कई प्रकार के सर्वेक्षण और पंजीकरण पर आधारित है। 2016 में होने वाली कुल मौतों में कैंसर से होने वाली मृत्यु 8 प्रतिशत रही है। इन आँकड़ों में पोषक तत्त्वों की कमी और टीबी की व्याप्ति ऐसी समस्याएँ हैं, जिन्हें सरकार और समाज को मिलकर हल करने की जरूरत है। विडंबना है कि हमारा समाज अतिराजनीतिक हो चुका है और वह स्वास्थ्य संबंधी मसलों पर तटस्थता से बात करने की बजाय पार्टीबंदी में फँस जाता है। दूसरी समस्या ध्रुवीकृत मीडिया की है, जो समस्याओं को देश और समाज की तरफ से देखने की बजाय नेताओं की छवि की ओर से देखने लगा है। इतनी कमियों से ग्रसित बीमार समाज नया भारत नहीं बना सकता। यह सही है कि टीबी एक संक्रामक रोग है और सरकार की तमाम योजनाओं के कारण उससे होने वाली मौतें कम हुई हैं। इसके बावजूद इस बीमारी से परेशान रहने वाले बढ़े हैं। टीबी के साथ पोषक तत्त्वों की कमी का चोली दामन का साथ है। पोषक तत्त्वों की कमी से यह बीमारी ज्यादा कष्टकारी हो जाती है और उसका मरीज देर से चंगा हो पाता है। आज जरूरत है जाति और धर्म के विवादों में घिरी व्यवस्था को उन जरूरी चीजों पर ध्यान देने की, जिससे किसी देश का शरीर स्वस्थ रहता है।

दिल्ली के प्रदूषण का पशु-पक्षियों पर असर

स्माँग से 60% कम हुए पक्षी मौत का खतरा 4 गुना ज्यादा

दिल्ली में बढ़ते प्रदूषण का असर परिंदों की संख्या पर पड़ रहा है। राजधानी में इनकी संख्या तेजी से कम हो रही है। बर्ड एक्सपर्ट्स ने भास्कर को बताया कि बीते एक साल में माइग्रेटरी बर्ड्स समेत दिल्ली में जो पक्षियों की प्रजातियाँ पाई जाती थी और जितने पॉइंट्स पर बर्ड सेंचुरी में ये दिखती थी, उसमें कमी आ गई है। असोला भाटी वाइल्ड लाइफ सेंचुरी के पक्षी विशेषज्ञ सुहेल मदान ने बताया कि पिछले दो हफ्तों में दिल्ली में जिस तरह से प्रदूषण का स्तर आठ से दस गुना ज्यादा हो गया है, उससे शहर में पाई जाने वाली विभिन्न प्रजातियों के पक्षियों में 60 फीसदी तक कमी

आई है। वे बताते हैं कि पहले असोला भाटी वाइल्ड लाइफ सेंचुरी में ही 100 पॉइंट्स पर 250 पक्षियों की प्रजातियाँ पाई जाती थीं। लेकिन अब पिछले 10 दिनों में इन पॉइंट्स की संख्या घटकर 40-50 ही रह गई है। हम लगातार इस तरह का सर्वे कर रहे हैं कि परिंदे बर्ड सेंचुरी में किधर-किधर पाये जाते हैं। वे बताते हैं कि पिछले एक साल में दिल्ली में प्रदूषण की भयावह स्थिति के कारण गोरैया, हँस, चील, किंगफिशर समेत पक्षियों की कई प्रजातियाँ कम हो गई हैं।

वाइल्ड लाइफ इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया के वैज्ञानिक डॉ. वी.पी. उनयाल ने बताया कि प्रदूषण के कारण एक साल में दिल्ली और आसपास के इलाकों में एक लाख से ज्यादा पक्षियों की मौत हो जाती है। पिछले दो हफ्ते से जिस तरीके से बेहद खतरनाक स्तर पर दिल्ली में प्रदूषण की स्थिति बनी हुई है, इससे अनुमान के मुताबिक करीब 10 हजार से ज्यादा पक्षियों की मौत हो गई हैं। पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय के प्रोजेक्ट सफर के प्रोग्राम डायरेक्टर डॉ. गुफरान बेग इस बारे में कहते हैं कि प्रदूषण का सबसे ज्यादा नुकसान पशुओं और परिंदों को है। क्योंकि वे ज्यादातर बाहर खुले में ही रहते हैं। इससे उनकी आँखों पर भी असर पड़ता है। साँस लेते समय उनके फेफड़ों की कोशिकाओं में प्रदूषण सीधे जाता है। मौसम विभाग के एन्वायरमेंट मॉनिटरिंग एंड रिसर्च सेंटर (ईएमआरसी) के हेड डॉ. विजय कुमार सोनी ने बताया कि बाघ, हिरण, गोरिल्ला, सांभर, पक्षियों की प्रजातियों के साथ सभी तरह के पशुओं के लिए यह प्रदूषण बेहद घातक हो रहा है। वहीं इंडियन एसोसिएशन फॉर एयर पॉल्यूशन कंट्रोल के जनरल सेक्रेटरी एस.के. गुप्ता ने बताया है कि वायु प्रदूषण के साथ ही जल प्रदूषण की भी भयावह स्थिति बनी हुई है, जिसके कारण नदियों और तालाबों में मछलियों की संख्या भी लगातार गिर रही है। इंडस्ट्रियल पॉल्यूशन से नदियों व तालाबों में जल प्रदूषण का स्तर बढ़ रहा है। मछलियों की संख्या कितनी गिरी है? इस ओर भी ध्यान देने की जरूरत है।

इन चार तरह से हो रहा जानवरों पर असर

3 गुना ज्यादा बीमार-पीपुल्स फॉर एनीमल्स की ट्रस्टी गौरी मुलेखी ने बताया कि दिल्ली में फैले प्रदूषण का असर पक्षियों और जानवरों पर पड़ रहा है। पक्षी तेजी से बीमार पड़ रहे हैं। संजय गाँधी एनीमल केयर सेंटर, जैन बर्ड हॉस्पिटल जैसे

शेल्टर होम्स में बीमार पक्षियों की संख्या में जून-जुलाई की तुलना में तीन गुना की बढ़ोतरी हुई है। इसी प्रकार पालतू पशु जैसे डॉग्स तेजी से बीमार पड़ रहे हैं। उन्हें साँस लेने में तकलीफ हो रही है। पालतू जानवर घर के अंदर भी तकलीफ में है।

गिर रही है लाइफ एक्सपेक्टेंसी–इंडियन पॉल्यूशन कंट्रोल एसोसिएशन की डिप्टी डायरेक्टर राधा गोयल ने बताया कि जिस तरह दिल्ली में इंसानी शरीर पर असर पड़ते हुए उनकी लाइफ एक्सपेक्टेंसी रेट लगातार गिर रही है। ठीक उसी तरह यह परिंदों में और भी कम हो रही है। कार्बन मोनोऑक्साइड, पीएम 2.5 और पी.एम. 10 जैसे प्रदूषित कण दिल्ली में परिंदों की लाइफ एक्सपेक्टेंसी को दो गुनी रफ्तार से कम कर रहे हैं। यह बेहद खतरनाक है।

खाना मिलना बंद हो गया है–पक्षियों के पौष्टिक आहार कहे जाने वाले कैटरपिलर, कीड़े-मकोड़े की तादाद भी कम हो ती जा रही है। प्रदूषण के कारण दिल्ली में तितलियाँ भी उड़ना बंद हो गई हैं। इनकी संख्या लगातार दिल्ली से कम होती जा रही है। ऐसे में ये परिंदें दिल्ली से दूर पहाड़ी इलाकों का रुख कर रहे हैं। जो जानवर माइग्रेट होकर कहीं बाहर नहीं जा रहे हैं उन्हें भोजन की काफी परेशानी हो रही है। इन्हें अपनी नैचुरल डाइट के अलावा दूसरी चीजों पर निर्भर होना पड़ रहा हैं।

चार गुना बढ़ जाती है मृत्यु दर–एक्सपर्ट्स बताते हैं कि छोटे पक्षियों के फेफड़ें इंसानों के फेफड़ों से काफी छोटे होते हैं। वह इंसानों की तुलना में एक सैकेंड में चार गुना तेजी से धड़कते हैं। इस तरह के खतरनाक प्रदूषण की स्थिति में इन पक्षियों में कैंसर और कई तरह की गंभीर बीमारियों का खतरा 90 प्रतिशत तक बढ़ जाता है। पक्षियों का डेथ रेट प्रदूषण से संपर्क में आने से चार गुना तक बढ़ जाता है। क्योंकि परिंदे 24 घंटे प्रदूषण के संपर्क में रहते हैं।

पॉल्यूशन कम करने को कई स्टार्टअप्स कर रहे हैं काम...

वायु प्रदूषण से निजात दिलाने में मददगार नवाचार

दिल्ली एनसीआर में ही नहीं, बल्कि राजस्थान, मध्यप्रदेश समेत देश के कई हिस्से में प्रदूषण खतरनाक स्तर पर पहुँच गया है। शहरों के ऊपर प्रदूषण की चादर-सी बिछ गई है। इससे पार पाने के लिए सरकारी स्तर पर

पिछले कई वर्षों से प्रयास जारी है। अब इससे निजात दिलाने के लिए युवा उद्यमियों ने भी कमर कस ली है। वह कई नए-नए उत्पादों को लेकर सामने आए हैं। इनके उत्पाद न केवल घर और ऑफिस के वातावरण को साफ रखने में मददगार हैं, बल्कि वायु प्रदूषण को नियंत्रित करने में भी सहायक साबित हो रहे हैं।

चिंताजनक हालात-अमरीकी अनुसंधान संगठन बर्कले अर्थ के डेटा के अनुसार, दिल्ली, यूपी व बिहार में पीएम 2.5 का स्तर औसत से कई गुणा ज्यादा है। डब्लूएचओ के 2016 की रिपोर्ट में 2012 तक दुनियाभर में 30 लाख लोगों की मौत वायु प्रदूषण की वजह से हुई थी, जिसमें से अकेले 20 प्रतिशत यानी 6 लाख लोग भारत के थे। डब्लूएचओ व सीपीसीबी की रिपोर्ट में दिल्ली ही नहीं, बल्कि यूपी, राजस्थान और एमपी के प्रमुख शहरों की हालत को चिंताजनक बताया गया है।

राहत दिलाने वाले कुछ इनोवेशन

एयर प्यूरीफायर-कुछ स्टार्टअप किफायती दामों पर इंडोर एयर प्यूरीफायर मुहैया करा रहे हैं। यह घर व बाहर लोगों को वायु प्रदूषण से होने वाले नुकसानों से बचाता है। इसके अलावा फेसमास्क भी बना रहे हैं स्टार्टअप।

क्वालिटी मॉनिटर-कार, ऑफिसेज और घरों के लिए एयर क्वालिटी मॉनिटरिंग डिसप्ले, रूम प्यूरीफायर्स, लेजर सेंसर जैसी तकनीक से लैस उपकरण भी बाजार में मौजूद है। ये एप के जरिये प्रदूषण के स्तर की जानकारी देता है।

हरियाली के जरिये-पौधे व बीज मुहैया कराकर घरों और ऑफिसों में वातावरण को साफ रखने में मदद करते हैं, साथ में यह बताते भी है कि पौधे के माध्यम से घर और ऑफिस को कैसे स्वच्छ रखें।

कॉर्बन सोखता है-कुछ स्टार्टअप खास तरह के उपकरण तैयार कर रहे हैं, जो वाहनों से उत्सर्जित रसायनिक तत्त्वों सहित कॉर्बन को अपने अंदर एकत्र कर लेता है। बाद में इसका प्रयोग पैंट, स्प्रे और इंक बनाने में होता है।

प्रदूषण इंडिकेटर-अपने ग्राहकों को आईओटी आधारित टर्मिनल, एनालिटिक प्लेटफॉर्म, रिपोटर्स, चार्ट व अन्य सुविधाएँ भी मुहैया करा रही हैं। इनके जरिये प्रदूषण का स्तर पता करना संभव है।

राजस्थान व एम.पी. के शहर भी

टॉप-10 पाल्यूटेड सिटी इंडिया-डब्लूएचओ की रिपोर्ट के अनुसार सन् 2016 में दिल्ली, पटना, ग्वालियर, रायपुर, अहमदाबाद, फिरोजाबाद, अमृतसर, कानपुर, आगरा तथा लुधियाना सबसे पाल्यूटेड शहर थे। इसी तरह सीपीसीबी की रिपोर्ट के अनुसार सन् 2017 में गाजियाबाद, इलाहाबाद, बरेली, दिल्ली, कानपुर, फिरोजाबाद, आगरा, अलवर, गजरोला तथा जयपुर सबसे पाल्यूटेड शहर थे।

सीपीसीबी एयर क्वालिटी इंडेक्स-7 नवम्बर, 2017 को जारी आँकड़ों के अनुसार दिल्ली-448, गाजियाबाद-475, नोएडा-468, जयपुर-279, जोधपुर-303, कोटा 203.

प्रदूषण स्तर (कितने का मतलब क्या)-बहुत अच्छा 0-50, संतोषजनक 51-100, औसत 101-200, खराब 201-350, बहुत खराब 351-500 तथा खतरनाक +500.

मृत्यु का तीसरा कारण बन जाएगा सीओपीडी

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार विश्व में लगभग 70 लाख लोग सीओपीडी से पीड़ित है। अध्ययन के अनुसार वर्ष 2030 तक विश्व में सीओपीडी मृत्यु का तीसरा प्रमुख कारण बन जाएगा। अब तक जहाँ इस बीमारी का बड़ा कारण तंबाकू के सेवन को माना जा रहा था वहीं अब बढ़ता प्रदूषण भी प्रमुख कारणों में शामिल हैं।

प्रतिवर्ष नवंबर महीने के तीसरे बुधवार को क्रोनिक ऑब्सट्रक्टिव पल्मोनरी डिजीज (सीओपीडी) डे मनाया जाता है। इस दिवस को मनाने का मुख्य उद्देश्य दुनियाभर में सीओपीडी की देखभाल में सुधार के बारे में जागरूकता पैदा करना है। सीओपीडी फेफड़ों की प्राणघातक बीमारी हैं, जो कि वायुमार्ग में रुकावट के कारण साँस लेने में परेशानी के परिणामस्वरूप होती है। अन्य स्थितियों में वायुमार्ग की सूजन, जलन के कारण उत्पन्न होने वाली स्थिति को क्रोनिक ब्रोंकाइटिस कहा जाता है।

कुपोषण के शिकार भी-साँस की बीमारी की वजह से मरीज कुपोषण का शिकार भी हो सकता है। यह एक दुविधा है कि हमारे देश में सीओपीडी के शुरुआती

निदान के विकल्प भी कम हैं। इस रोग को लेकर लोगों में अवेयरनेस भी नहीं है। जिस तरह लोग शुगर, ब्लड प्रेशर और दूसरे हैल्थ चेकअप कराते हैं उसी तरह फेफड़ों की जाँच भी करानी चाहिए। इसके लिए स्पाइरोमेट्री टेस्ट की मदद ली जा सकती है। इसके अलावा माइक्रोस्पाइरोमेट्री टेस्ट भी आजकल पॉपुलर है। इसके जरिये छह सेकंड में सीओपीडी का पता लगाया जा सकता है। इसके अलावा टीकाकरण के जरिये भी सीओपीडी की रोकथाम की जा सकती है। अहम बात यह है कि इस रोग को लेकर लोगों को जागरूक किये जाने की भी बेहद जरूरत है। जागरूकता ना होने से कई लोग इसके शिकार हो जाते हैं।

सीओपीडी के लक्षण–इस बीमारी के मुख्य लक्षणों में साँस की तकलीफ, अस्थमा, साँस लेते समय सीटी जैसी ध्वनि उत्पन्न होना, सीने में जकड़न, बलगम के साथ खाँसी, अनायास वजन में कमी होना शामिल है।

कैसे करे रोकथाम–सक्रिय धूम्रपान के साथ-साथ निष्क्रिय धूम्रपान (दूसरे व्यक्तियों के धूम्रपान करने से उत्पन्न होने वाले धुएँ) से बचें। यह सीओपीडी के प्रमुख कारणों में से एक है। आउटडोर और इनडोर प्रदूषण जैसे कि वायु प्रदूषण, रासायनिक धुएँ और धूल से खुद को पूरी तरह बचाये रखें। बढ़ती भीड़-भाड़ या भीड़ भरे स्थान जैसे कि अधिक यातायात, भीड़ वाले बाजारों और रासायनिक कारखानों पर जाने से बचाव करें। धूल और रसायनों के व्यावसायिक जोखिम से बचने के लिए मुखौटा या सुरक्षा उपकरणों का इस्तेमाल करें। साँस के संक्रमण को कम करने के लिए संतुलित और पौष्टिक आहार लें।

–डॉ. शुभांशु

वायु प्रदूषण से हो सकता है हड्डियों को नुकसान

वायु प्रदूषण से साँस संबंधी रोग, त्वचा रोग और कैंसर जैसी बीमारियाँ तो होती ही हैं साथ ही अब वायु प्रदूषण आपकी हड्डियों को भी नुकसान पहुँचा सकता है। यह खुलासा हुआ है एक शोध में, जिसमें बताया गया है कि वायु प्रदूषण से ऑस्टियोपोरोसिस होने का खतरा भी हो सकता है।

दरअसल वायु प्रदूषण के बढ़ने से शरीर में खनिज की मात्रा कम होने के कारण हड्डियों के टूटने का खतरा बढ़ सकता है। अध्ययन में पहली बार अस्पताल में

उन समुदायों के लोगों के हड्डियों टूटने के मामलों के बारे में जानकारी दी गई है, जहाँ पार्टिक्यूलेट मैटर उच्च स्तर पर हैं, जो कि वायु प्रदूषण का उच्च स्तर है।

शोधकर्त्ता ने कहा कि कम आयु वाले समुदायों में हड्डियाँ टूटने का खतरा सबसे अधिक है। अध्ययन में पाये गये स्वच्छ वायु के कई लाभों में, हड्डियों की मजबूती एवं उन्हें टूटने से बचाना भी शामिल है।

दशकों से किये जा रहे अध्ययनों में पाया गया है कि हृदय और श्वास रोग से लेकर कैंसर और खराब अनुभूतियों सहित कई मामलों में वायु प्रदूषण स्वास्थ्य के लिए खतरा है। यही नहीं अब यह ऑस्टियोपोरोसिस का भी मुख्य कारण बनकर उभर रहा है।

असफल व सफल मानव जीवन

(चाल : आत्मशक्ति.....)

अतिदुर्लभ मानव जन्म पाकर, नहीं जानते है सत्य-असत्य।
तन-मन-इन्द्रिय आधीन होकर, करते है मानव जन्म व्यर्थ।। (1)
तन हेतु चाहिए भोजन-पानी-आवास-वस्त्र-औषध आदि।
इस हेतु करते पढ़ाई से लेकर, सर्विस-व्यापार-धर्म आदि।। (2)
मन हेतु चाहिए मनोरंजन, इस हेतु करते फैशन-व्यसन।
भोगोपभोग से लेकर सिनेमा नाटक खेल व परनिंदा परपीड़न।। (3)
तन व मन हेतु जो चाहिए उसके माध्यम बनती इन्द्रियाँ।
स्पर्श-रस-घ्राण-चक्षु-कर्ण के भोगोपभोग हेतु चाहिए विविध वस्तुएँ।। (4)
उक्त विषयों के हेतु अधिकतर मानव करते कीट-पतंग समभाव व्यवहार।
आहार-निद्रा-भय-मैथुन-परिग्रहादि हेतु करते मानव जन्म को बेकार।। (5)
सत्य-असत्य को नहीं जानते न जानते है आत्मा-परमात्मा।
नीति-अनीति को भी नहीं जानते, नहीं जानते पुण्य-पाप व्यवस्था।। (6)
भक्ष्य-अभक्ष्य भी नहीं जानते, नहीं जानते पथ्य-अपथ्य।
दैनिक क्रियाओं को भी सही न जानते/(करते), नहीं जानते हित-अहित।। (7)

व्यावहारिक ज्ञान भी सही न जानते नहीं जानते सामान्य ज्ञान।
सामान्य व्यवहार के शब्द ज्ञान भी सही न जानते कहाँ जानेंगे परम ज्ञान।। (8)
तोता के जैसे रूढ़ि परंपरा से जो शब्द करते है प्रयोग सदा।
उसका ज्ञान भी सही न जानते व्युपत्ति से पर्यायवाची शब्दार्थ।। (9)
साक्षर हो या निरक्षर शहरी हो या ग्रामीण आबाल वृद्ध वनिता।
धार्मिक या अधार्मिक अधिकतर जनों की है उपरोक्त दुर्दशा।। (10)
ऐसे मानवों का जीवन व्यर्थ, सफल मानव होते इनसे भिन्न।
यथायोग्य श्रद्धा-प्रज्ञा-चर्या से सफल मानव होते महान्।। (11)
दया-दान-सेवा-परोपकार युक्त जो होते है ज्ञान वैराग्य युक्त।
ऐसे मानव जीवन ही सफल होता, सफल बनने हेतु 'कनक' बनाया काव्य।। (12)

चितरी, दिनांक 02.11.2017, रात्रि 9.45
(यह कविता ब्र. संध्या के कारण बनी।)

पिस्ते और मूँगफली से बढ़ती है याददाश्त

हृदय की तरंगों की भाँति मस्तिष्क की भी तरंगें होती हैं। इनमें से कुछ विशेष तरंगें याददाश्त को बेहतर बनाने में अहम भूमिका निभाती हैं। हालिया अध्ययन में सामने आया है कि रोजाना दाने जैसे मूँगफली, पिस्ता खाने से ये तरंगें मजबूत होती हैं। पाँच दानों यानी बादाम, काजू, पिस्ता, मूँगफली, अखरोट को नियमित रूप से खाने पर मस्तिष्क तरंगों पर पड़ने वाले असर का लोमा लिंडा यूनिवर्सिटी कैलिफोर्निया के शोधकर्त्ताओं ने अध्ययन किया। शोधकर्त्ताओं ने मस्तिष्क तरंगों की शक्ति का पता लगाने के लिए नट्स खाने वाले लोगों के दिमाग का इलेक्ट्रोएन्सेफैलोग्राफी (ईईजी) किया। ईईजी हृदय तरंगों की मापने वाली तकनीक ईसीजी की तरह ही है। शोध में सामने आया कि इन दानों में पिस्ता लेने पर गामा किरणें सबसे ज्यादा प्रतिक्रिया देती हैं। गामा किरणें ही सीखने की क्षमता, जानकारी को याद रखने की शक्ति में मददगार होती हैं। वहीं मूँगफली लेने वाले लोगों के दिमाग में डेल्टा किरणों ने सर्वाधिक प्रतिक्रिया दी। ये किरणें प्रतिरक्षा तंत्र मजबूत करने के साथ ही गहरी नींद में भी मददगार होती हैं। यह शोध एफएएसईबी जनरल में प्रकाशित हुआ है।

अज्ञानी-मोही स्व-दोषों को नहीं जानते

(दोष दूर से मानव बनते है महामानव व भगवान्)

(चाल : आत्मशक्ति....., सायोनारा.....)

स्व-गुण-दोषों को भी नहीं जान पाते (है) अधिकतर मानव।
पर दोषों को अधिक जानते पर गुणों को भी मानते अवगुण।।
यथा आँख न स्वयं को देखती केवल देखती है बाह्य वस्तु।
तथाहि अधिकतर लोग पर दोष देखने में होते प्रवृत्त।। (1)

जो वस्तु पूर्णतः प्रकाश को करती शोषण, नहीं करती प्रकाश विसर्जन।
वह वस्तु दिखती काली, ऐसा ही होते वे अधिकतर जन।।
यथा बुझा हुआ दीपक न होता है स्व-पर प्रकाशवान्।
तथाहि वे अधिकतर जन स्व-पर गुण-दोष से होते अनभिज्ञ।। (2)

अज्ञान-मोह के कारण वे जन होते है प्रज्ञाचक्षु से अंधे।
अंधे यथा न देख पाते हैं सूर्य, तथाहि वे गुण-दोष में अंधे।।
जितने अंश में अज्ञान-मोह होते जाते है क्षीण से क्षीणतर।
उतने अंश में वे गुण-दोषों को जानने में होते प्रज्ञाशील।। (3)

अनंतानुबंधी क्रोध-मान-माया-लोभ व मिथ्यात्व जब होते है क्षीण।
तब होता है सम्यग्दर्शन जिससे होते ज्ञान-चारित्र भी सम्यक्।।
इससे ही स्व-गुण-दोषों का होता ज्ञान जिसे कहते सम्यग्ज्ञान।
दोष दूर हेतु जो होता है पुरुषार्थ उसे कहते हैं सम्यक् आचरण।। (4)

क्रोधादि दोष दूर होने से उत्पन्न होते उत्तम क्षमादि धर्म।
फैशन-व्यसन व पंचपाप होते दूर जिससे उत्पन्न होता धर्म।।
घाती नाश से बनते सर्वज्ञ जिससे अनंत चतुष्टय होता प्रगट।
अठारह दोष होते विनाश जिससे, जीव बनते है निर्दोष आप्त।। (5)

सर्व कर्मनाश से बनते शुद्ध, जिससे बनते सिद्ध-बुद्ध-आनंद।
ऐसी दशा प्राप्ति करने हेतु व दोष दूर हेतु 'कनकनंदी' करे प्रयत्न।। (6)

चितरी, दिनांक 01.11.2017, रात्रि 1.05

व्यंग्यात्मक कविता

मैं हूँ मान (मद)/अहंकार की आत्मकथा

(चाल : जय हनुमान....., सायोनारा.....)

मैं हूँ 'मान' सबसे निराला, सबसे निराला मेरा काम।
संसारी जीवों का हूँ परम शत्रु, तो भी मेरा करे वे सम्मान।।

मेरा ही अनेक नाम रूप है, गर्व-दर्प-अभिमान-घमण्ड-दंभ।
अनंतानुबंधी-अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान-संज्वलन भेद।।

अष्टमद से ले संख्य-असंख्यात, अनंत रूप भी होता मेरा भी।
एकेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि से लेकर, दशम गुणस्थान तक सद्भाव भी।।

मिथ्यात्व अवस्था में मेरा स्वरूप, होता अनंतानुबंधी रूपी भी।
इस अवस्था में संज्वलन तक, चारों चौकड़ी विद्यमान ही (भी)।।

इस अवस्था में होते अष्टमद, जिससे जीव न जाने स्वरूप भी।
शरीर को मानते है स्व-स्वरूप, सत्ता-संपत्ति (आदि) को माने स्वरूप ही।।

शरीर आश्रित व भौतिक आश्रित, तथाहि क्षायोपशमिक भावों को।
मिथ्यादृष्टि जीव स्व-स्वरूप मानते, करते है अष्टविध मद को।।

इस अवस्था में (जीव में) न होता धर्म प्रारंभ, भले पालन करे धर्म बाह्य रूप में।
आत्मविशुद्धि के बिना धर्म पालन, होता है ख्याति-पूजा-लाभ रूप में।।

स्वयं को ही श्रेष्ठ-ज्येष्ठ जताने हेतु, करते हर काम-भाव-व्यवहार।
ढोंग-पाखण्ड व आडम्बर करते, पालते दीन-हीन अहंकार।।

पढ़ाई-नौकरी से ले खान-पान, वेश-भूषा व यान-वाहन।
विवाह पर्व-उत्सव धार्मिक काम, मेरे सम्मान हेतु करते ताम-झाम।।

आत्मज्ञान से मेरा पतन, आत्मवैभव ज्ञान से होता स्वाभिमान।
अष्टमद परे होता आत्मगौरव, दीन-हीन-अहंकार होता विलीन।।

इससे जीव करते आत्म-उत्थान, ज्ञान वैराग्य से होते संपन्न।
क्रम से मेरे अन्य रूप होते क्षीण, दशवें गुणस्थान में मेरा होता मरण।।

इससे परे जीव होते भगवान्, अनंत आत्मगुण से संपन्न।
वे पुनः नहीं होते मेरे अधीन, 'कनक' इस हेतु मुझे न दे सम्मान।।

चितरी, दिनांक 10.11.2017, अपराह्न 5.16

नीच प्राणी भी स्वयं को श्रेष्ठ मानकर महान् को भी नीच मानते

(चाल : आत्मशक्ति....., सायोनारा.....)

अधिकतर जीव दूषित भाव से स्वयं को ही मानते श्रेष्ठ-जेष्ठ,
भले वे जीव होते है अज्ञानी-मोही व स्वार्थी दुष्ट।
रावण-कंस व दुर्योधन-हिटलर आदि प्रसिद्ध उदाहरण है,
किन्तु अधिकतर जीव अप्रसिद्ध तथापि वे होते दुष्ट है।। (1)

महामत्स्यसम तंदुल मत्स्य भी जाते है सप्तम नरक,
महामत्स्य खाकर प्रचुर जीव, बिना जीव खाकर भी तंदुल मत्स्य।
शेर सर्प नारकी से भी अधिक पापी होते है नित्य (सूक्ष्म) निगोदिया,
भाव कलंक प्रचुरता से अभी तक न बने वे त्रस जीव।। (2)

पापानुबंधी पुण्य के कारण रावण आदि थे शक्ति/(साधन) संपन्न,
किन्तु ऐसे जीव पाप के कारण, शक्ति अभाव से भी करते दूषित परिणाम।
भले वे अन्य को मारने हेतु नहीं कर पाते है युद्ध आदि,
तथापि वे दूषित परिणाम से पापकर जाते है निगोद/(नरक) आदि।। (3)

क्रोध-मान-माया-लोभ के कारण कलुषित भाव करते वे जीव,
ईर्ष्या-घृणा-तृष्णा-मोह के कारण कलुषित भाव करते वे जीव।
ऐसे जीव निर्दोषी व ज्ञानी-गुणी से भी करते दूषित भाव,
उनकी निंदा अपमान करके जाते हैं नरक व निगोद।। (4)

रावण-कंस-दुर्योधन आदि स्वयं को महान् मानते रहे,
राम-कृष्ण व पांडव आदि को दोषी मानकर सताते रहे।

ऐसा ही क्षुद्र प्राणी से लेकर मनुष्य तक के होते भाव-व्यवहार,
स्वयं को ही श्रेष्ठ-ज्येष्ठ मानते, श्रेष्ठ का भी करते अनादर।। (5)

इनसे विपरीत महान् जीव स्वयं को ही करते पावन,
अन्य किसी से भी नहीं करते वे दूषित परिणाम।

अन्य से दूषित परिणाम रखना भी वे स्वयं की नीचता मानते,
इन कारणों से महान् होते 'कनकनंदी' उन्हें आदर्श मानते।। (6)

चितरी, दिनांक 09.11.2017, मध्याह्न 02.31

हाय रे! मानव संकीर्ण वाला...!?

(चाल : बस्ती-बस्ती पर्वत-पर्वत....., सायोनारा.....)

हाय रे! मानव संकीर्ण वाला...कट्टर-दुराग्रह-अनुदार वाला...ऽऽ
भाव-व्यवहार व वचन वाला...धर्म से ले राजनीति वाला...ऽऽ

स्व-संकीर्णता से (ही) सभी मानने वाला...अन्य सभी को मिथ्या मानने वाला...ऽऽ
कूपमण्डुकता व भेड़चाल से भी परे...अधिक कट्टरता व दुराग्रह तेरे...ऽऽ

तुमने महापुरुषों को मूर्ख माना...उन्हें अपमानित किया प्राण हरा...ऽऽ
सभ्यता-संस्कृति व आध्यात्मिकता...नीति-नियम-सदाचार को मारा...ऽऽ

व्यापकता-उदारता को तुम नाशते...प्रगतिशीलता को तुम रोंदते...ऽऽ
शोध-बोध-प्रयोग के हंतार...भाव प्रदूषण का भी तुम कर्त्तार...ऽऽ

जो कुछ देखते (हो) सुनते-पढ़ते...धार्मिक-नैतिक उपदेश सुनते...ऽऽ
सभी को स्व-संकीर्णता से मानते...अन्य सभी को तू अग्राह्य करते...ऽऽ

तुम्हारा वर्णन भी हुआ है शास्त्रों में...हठाग्रही-दुराग्रही-मिथ्यात्वी रूप में...ऽऽ
कुशिष्य या कुश्रोता रूप में...मंथरा-शकुनी (आदि) उदाहरणों में...ऽऽ

चालनी भग्नघट-शिला रूप में...बगुला-तोता-मच्छर-जोंक रूप में...ऽऽ
महिष-सर्प-गिली मिट्टी रूप में...अगुणग्राही-गुणद्वेषी रूप में...ऽऽ

तेरा विश्व रूप सर्वत्र व्याप्त...धर्म राजनीति-भाषा पर्यंत...ऽऽ

शिक्षा-सभ्यता-संस्कार-संस्कृति...तेरे कारण सर्वत्र होती विकृति...ऽऽ
यदि कोई शब्द प्रसिद्ध किसी क्षेत्र में...उसे भी प्रयोग न करते (हो) अन्य क्षेत्र में...ऽऽ
योनि-लिंग-वीर्य आदि व्यापक शब्द...केवल अश्लीलता में करते प्रयोग...ऽऽ
ऐसा ही भाव-व्यवहार वचन आदि...जो होते अति व्यापक प्रयोग...ऽऽ
उसे भी स्व-संकीर्णता से करते प्रयोग...अन्य धर्म-विषयों को न करते प्रयोग...ऽऽ
अन्य धर्म के पावन व्यक्ति या काम...भोजन-नियम या सदाचरण...ऽऽ
शब्द से लेकर नाम अथवा स्थान...तेरे लिए अयोग्य व अग्रहणीय...ऽऽ
संकीर्ण स्वार्थ या परवंचना हेतु...प्रयोग करते हो अन्य को मारने हेतु...ऽऽ
यथा चोर-ठग-आतंकवादी हत्यारे...रावण सम (व्यवहार) करते सीता हरण हेतु...ऽऽ
इस हेतु अन्य की भाषा बोलेंगे...वेश-भूषा व हाव-भाव करोगे...ऽऽ
मुँह में प्रभु नाम बगल में छूरी सम...गोमुख व्याघ्र या बक भक्त सम...ऽऽ
गिरगिट या ऑक्टोपस के समान...छद्मवेशी बनते हो शिकारी समान...ऽऽ
किन्तु वास्तविक में रहते हो संकीर्ण...संकीर्णता त्याग हेतु 'कनक' का आह्वान...ऽऽ

चितरी, दिनांक 06.11.2017, रात्रि 7.43
(यह कविता ब्र. संध्या के कारण बनी।)

संदर्भ-

ज्ञान का अहंकार एवं अज्ञानता का कारण

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने। (13) स्वतंत्रता के सूत्र, पृ. 571

प्रज्ञा Conceit and; अज्ञान Lack of knowledge, sufferings are caused by the operation of ज्ञानावरणीय, knowledge-obscuring karmas.

ज्ञानावरण के सद्भाव में प्रज्ञा और अज्ञान परीषह होती हैं, प्रज्ञा क्षायोपशमिकी है, अर्थात् ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से होती है, अन्य ज्ञानावरण के उदय के सद्भाव में प्रज्ञा का सद्भाव है अतः क्षायोपशमिकी प्रज्ञा ज्ञानावरण के उदय में मद उत्पन्न करती है, सर्व ज्ञानावरण कर्म का क्षय हो जाने पर मद नहीं होता। अतः प्रज्ञा और

अज्ञान परीषह ज्ञानावरण कर्म के उदय से उत्पन्न होती हैं अर्थात् इन दोनों परिषहों की उत्पत्ति में ज्ञानावरण कर्म का उदय ही कारण है।

केवल ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय होने पर केवलज्ञान होता है केवलज्ञान होने पर किसी भी प्रकार अहंकार नहीं होता है। जो अत्यंत अज्ञानी है, जैसे-एकेन्द्रिय आदि जीव; इनके विशिष्ट क्षयोपशम नहीं होने से तथा तीव्र ज्ञानावरणीय का उदय होने पर विशेष ज्ञान न होने के कारण इनके भी प्रज्ञा और अज्ञान परिषह विशेष नहीं होती है। लोकोक्ति भी है-'रिक्त चना बाजे घना।'

भर्तृहरि ने कहा भी है-

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः।
ज्ञानत्यवदूर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रंजयति।। (13) नीतिशतक

नासमझ को सहज में प्रसन्न किया जा सकता है। समझदार को उससे भी सहज में प्रसन्न किया जा सकता है परन्तु जो न समझदार है, न नासमझ है, ऐसे श्रेणी के मनुष्य को ब्रह्मा भी संतुष्ट नहीं कर सकते। इसीलिये इंग्लिश में कहावत है-

जो अल्पज्ञ होते हैं वे भयंकर होते हैं। A half mind is always dengerous. The little mind is proud of own condition.

संकीर्ण मन एवं कम बुद्धि वाले अधिक अहंकारी होते है। अल्पज्ञ लोग अहंकार से स्वयं को सर्वज्ञ मानकर सत्य को इंकार करते हैं।

मूर्खों के निम्नलिखित पाँच चिह्न हैं-

मूर्खस्य पंच चिह्नानि गर्वी दुर्वचनी तथा।
हठी चाप्रियवादी च परोक्तं नैव मन्यते।।

(1) अहंकारी होना (2) अपशब्द बोलना (3) हठग्राही (4) अप्रिय बोलना (5) दूसरों के द्वारा कहा हुआ हित सत्य नहीं मानना।

विद्यार्थी-परिषद् लक्षण

(सा समासओ तिविहा पण्णत्ता तं जहा-1. जाणिया, 2. अजाणिया, 3. दुव्वियड्ढा)।

वह (परिषद्) संक्षेप से तीन प्रकार की कही गई है। यथा-1. ज्ञायिका परिषद्

= जिनमत, परमत और गुण-दोष की जानकार परिषद्। 2. अज्ञायिका परिषद् = जिनमत परमत और गुण दोष की अनजान परिषद्। 3. दुर्विदग्ध परिषद् = पण्डितमन्य परिषद्। जिस प्रकार कोई रोटी आधी कच्ची और आधी जली होती है तो अखाद्य होती है उसी प्रकार जिनमें कुछ तो ज्ञान की कमी होती है और कुछ विकृत ज्ञान होता है, तिस पर भी जो अपने आपको पूरा पण्डित मानते फिरते हैं, उन्हें 'दुर्विदग्ध'-पण्डितमन्य कहते हैं।

अब क्रमशः इन तीनों परिषदों के लक्षण बतलाते हैं।

(1) ज्ञानी शिष्य-समूह-

खीरमिव जहा हंसा, जे घुट्टंति इह गुरुगुणसमिद्धा।
दोसे य विवज्जंती, तं जाणसु जाणियं परिसं।। (52) (नंदीसूत्र)

पहली जानकार परिषद् के लक्षण इस प्रकार हैं-जिस प्रकार जातिवान् श्रेष्ठ हंस, जल मिश्रित दूध में से, मात्र दूध ग्रहण करता है और जल को त्याग देता है, उसी प्रकार आचार्य आदि के प्रवचन तथा जीवनगत सद्गुणों को जीवन में ग्रहण कर, गुण समृद्ध बनती है और दोषों का त्याग करती है, उसे 'जानकार परिषद्' समझना चाहिए।

जो जैन धर्म मान्य षड् द्रव्य, नव तत्त्व आदि के तथा परमत के जानकार हैं, जिनमत पर श्रद्धा रखते हैं, सद्गुण और दुर्गुण के पारखी हैं, परन्तु दूसरों के मात्र सद्गुणों की प्रशंसा करते हैं और जीवन में उतारते हैं किन्तु दुर्गुणों की अनावश्यक, निरर्थक निंदा नहीं करते, न जीवन में दुर्गुणों को स्थान देते हैं, वे जानकार परिषद् में आते हैं। ऐसे लोगों को समझाना अत्यंत सुगम होता है। इन्हें 'पात्र परिषद्' के अंतर्गत समझना चाहिए।

(2) अज्ञानी शिष्य समूह-

जा होई पगइमहुरा, मियछावयसीहकुक्कुडयभूआ।
रयणमिव असंठविया, अजाणिया सा भवे परिसा।। (53)

दूसरी अनजान परिषद् के लक्षण इस प्रकार हैं-जो प्रकृति से मधुर हो = अन्यमति, नास्तिक या अनार्य होकर भी स्वभाव से सरल एवं नम्र हो, मृग के बच्चे, सिंह के बच्चे, या कुकड़े के बच्चे के समान हों = जैन कुल के होकर भी जैन धर्म से

अनजान हो, असंस्थापित = असंस्कृत अघटित रत्न की भाँति जिसके गुण अब तक छुपे पड़े हों, वह 'अजानकार परिषद्' होती हैं।

1. चाहे व्यक्ति अन्य मत का या नास्तिक हो, पर यदि वह सरल अन्तःकरण वाला हो, नम्र हो, सत्य मत के सामने आने पर अपने मत का आग्रह करने वाला नहीं हो, सत्य का समादर करने वाला हो, तो उसे समझाना सरल है। इसी प्रकार यदि कोई शिकारी, कसाई आदि अनार्य, पापाचरण करने वाले हो, पर वे भी स्वभाव से सरल हो, तो उन्हें समझाना सरल है।

2. अथवा जो मृग के बच्चे के समान कभी बहक सकते हैं, परन्तु अब तक किसी के बहकावे में नहीं आये हैं, ऐसे जैन कुल के मंदबुद्धि बच्चों को भी समझाना सरल है।

3. जो कुकड़े के बच्चे या सिंह के बच्चे के समान युद्ध-धर्मी और क्रूर बन सकते हैं, पर अब तक पापमति और पापाचारी नहीं बने हैं ऐसे अन्यमति के या नास्तिकों के या नीच जाति के बालकों को, बाल्यावस्था के रहते हुए अच्छे संस्कार देना सरल है।

4. अथवा जैसे अघटित रत्न में गुण छुपे रहते हैं और ज्यों ही उन्हें घर्षण और संस्कार मिलता है, उनके गुण प्रकट हो जाते हैं, उसी प्रकार जिस बालक में बुद्धि आदि छुपी पड़ी हैं, जिसे केवल थोड़े से शिक्षण और मार्गदर्शन की आवश्यकता है, वह मिलते ही जो जानकार बन सकता हो, उसे समझाना सरल है।

5. अथवा प्रौढ़ होकर भी जिन्हें जिनधर्म श्रवण का योग नहीं मिलने से जिनकी बुद्धि अभी तक सत्य प्राप्त नहीं कर सकी हैं, उन्हें भी समझाना सरल है।

ऐसे सभी प्राणी 'अजान परिषद्' के अंतर्गत हैं। जानकार परिषद् की अपेक्षा इन्हें समझाने में विलंब और प्रयत्न लगता है, पर ये समझ जाते हैं। अतः ये भी पात्र परिषद् हैं।

(3) पंडितमन्य-शिष्य-समूह-

न य कत्थइ निम्माओ, न च पुच्छइ परिभवस्स दोसेणं।
वत्थिव्व वायपुण्णो, फुट्टइ गामिल्लय रियड्ढो।। (54)

तीसरी दुर्विदग्ध परिषद् के लक्षण इस प्रकार हैं-

जो न स्वयं किसी विषय या शास्त्र में विद्वत्ता रखते हैं, न परिभव दोष से किसी से कुछ पूछते हैं (हार या लघुता के भय से किसी विद्वान् से ज्ञान ग्रहण नहीं करते हैं) परन्तु जैसे वायु से भरी मसक, केवल वायु से फूली हुई होती है, उसमें प्रवाही या घन कोई पदार्थ नहीं होता, उसी प्रकार जो किसी ठोस ज्ञान के बिना ही, वायु के समान कुछ दो चार पद, गाथाएँ, युक्तियाँ, उदाहरण आदि को सुनकर अपने आपको महान्-पण्डित मानकर फूले फिरते हैं, ऐसे ग्रामीण दुर्विदग्धों (= लाल बुझक्कड़ों) के झुण्ड को 'दुर्विदग्ध परिषद्' समझना चाहिए। ऐसे लोगों को यदि समझाना प्रारंभ किया जाये, तो ये लोग उपदेशक के ही आगे-आगे, शीघ्र-शीघ्र विषयपूर्ति करने का प्रयास करते हैं, और कहते हैं-'बस। बस। यह विषय तो हम स्वयं भलीभाँति जानते हैं' ऐसे लोगों को समझाना कठिन है। ये लोग अपात्र परिषद् हैं।

अयोग्य विद्यार्थियों के 14 दृष्टांत

1. सेल-घण, 2. कुडग, 3. चालणि, 4. परिपूणग, 5. हंस, 6. महिस, 7. मेसेय, 8. मसग, 9 जलूग, 10. बिराली, 11. जाहग, 12. गो, 13. भेरी, 14. अभीरी।

1. मुद्गशैल और घन-मेघ, 2. कुट-घडा, 3. चालनी, 4. परिपूणक सुधरी नामक पक्षी का घोंसला, जिससे घी छाना जाता था, 5. हंस, 6. महिष-भैंसा, 7. मेष-मेढ़ा, 8. मशक-मच्छर, 9. जलौका-विकृत रक्त चूसने वाला एक जलचर जंतु, 10. बिल्ली, 11. जाहक-सेल्हक, चूहे की जाति का तिर्यंच विशेष, 12. गाय, 13. भेरी और 14. अहीर।

जो 1. मुद्गशैल के समान अपरिणामी हो या 2. दुर्गन्धित घट की भाँति दुष्परिणामी हो, 3. चालनी के समान अग्राही हो या 4. परिपूणक के समान दोष-ग्राही हो, 5. भैंसे के समान अंतराय करने वाला हो या, 6. मच्छर के समान असमाधि करने वाला हो, 7. बिल्ली के समान विनय नहीं करने वाला हो, या 8. गाय-असेवक ब्राह्मणों के समान वैयावृत्य नहीं करने वाला हो, 9. भेरी नाशक के समान भक्ति न करने वाला हो, या ज्ञान का प्रत्यनीक-शत्रु हो, और 10. स्वदोष नहीं देखने वाले अहीर की भाँति आशातना करने वाला, या ज्ञान का विसंवादी हो, वह ज्ञान का अपात्र

है। उसे ज्ञान देना अयोग्य है।

जो 1. काली मिट्टी की भाँति परिणामी हो, 2. सुगंधित घट के समान सुपरिणामी हो, 3. कमण्डलू के समान ग्राही हो, 4. हंस के समान गुणग्राही हो, 5. मेष के समान अंतराय नहीं करने वाला हो, 6. जलौका के समान समाधि उपजाने वाला हो, 7. जाहक के समान विनय करने वाला हो, 8. गाय-सेवक ब्राह्मणों के समान वैयावृत्य करने वाला हो, 9. भेरी रक्षक के समान भक्ति करने वाला हो, या ज्ञान का प्रत्यनीक हो और 10. स्वदोष देखने वाले अहीर की भाँति आशातना नहीं करने वाला हो, या विसंवाद नहीं करने वाला हो, वह ज्ञान का पात्र है। उसे ज्ञान दिया जाये।

हाय रे! मानव भौतिक वाला

(चाल : बस्ती-बस्ती पर्वत-पर्वत....., सायोनारा.....)

हाय रे! मानव भौतिक वाला...नैतिक सदाचार रहित वाला...
आध्यात्मिक भाव (धर्म) से रहित वाला...धर्म से भी धन चाहने वाला...

भाव-व्यवहार सभी चार्वाक सम...भले धर्म जाति-राष्ट्र हो भिन्न...
पात्रानुसार जलाकार विभिन्न...किन्तु पानी यथा होता समान...

चार्वाक दर्शन होता भौतिकमय...जीव भी होता है भौतिकमय...
तन-मन-इंद्रिय होते भौतिक...आत्मा/(जीव) भी होता है भौतिकमय...

खाओ-पीओ-मजाकर यह है लक्ष्य...अनैतिक से भी करो ये काम...
ऋण लेकर भी करो ये काम...मरने के बाद न पुनः जन्म...

अतः न मानते हो पुण्य-पाप...भौतिकता हेतु सभी (काम) है योग्य...
पढ़ाई-सर्विस कृषि-व्यापार...राजनीति से धार्मिक काम...

दान दया सेवा परोपकार काम...आत्मविश्वास ले ध्यान-अध्ययन...
सादा जीवन से उच्च विचार तक...तुम्हारी दृष्टि में सभी अयोग्य...

जो होते नैतिक व धार्मिक...उन्हें मानते अयोग्य-मूर्ख...
स्वयं को मानते हो सच्चा ज्ञानी...करते काम अयोग्य-मनमानी...

करते हो अन्याय अत्याचार...शोषण-मिलावट-भ्रष्टाचार...

आक्रमण-युद्ध व आतंकवाद...धर्म से लेकर हर क्षेत्र को दूषित...
अन्य को भी बनाना चाहते स्व-सम...साम-दाम-दण्ड भेद के माध्यम...
जो न बनते है तुम्हारे समान...उनसे करते हो उक्त दुष्कर्म...

तुम सम नीच पशु भी न होते...मनुष्याकार साक्षात् दानव होते...
भौतिकता परे तुम बनो आध्यात्मिक...इस हेतु 'कनक' का तुम्हें आशीष...

चितरी, दिनांक 05.11.2017, रात्रि 10.31
(यह कविता ब्र. संध्या के कारण बनी।)

गुरुवर के गुण प्राप्ति हेतु गुरु की पूजा

(चाल : रे पारस! तेरी कठिन डगरिया.....)

हे! गुरुवर तव पावन जीवन...सत्य-समतामय शांत जीवन।
हमें भी चाहिए आप सम जीवन...इसलिए आपका करते पूजन।।

धन-जन-मान (व) भोगोपभोग से...हमारा न बना शांत जीवन।
यह सब आप अनुभव करके...धरा निस्पृह निराडम्बर जीवन।।

शत्रु-मित्र भाई-बंधु न तेरे...विश्व बंधुत्व के भाव है तेरे।
हमारे शत्रु-मित्र भाई (बंधु) होते...विश्व बंधुत्व के भाव न होते।।

ख्याति-पूजा-लाभ-प्रसिद्धि परे...आत्म उपलब्धि ही लक्ष्य तेरे।
अतः आप हो अपरिग्रही शांत...हम आपसे विपरीत संत्रस्त।।

आत्मानुसंधान आपश्री करते...स्व-गुण-दोषों का विचार करते।
गुणवृद्धि व दोष परिहार करते...अतः आप आध्यात्मिक विकास करते।।

इससे भिन्न हमारे भाव-व्यवहार...स्व-दोष न देखे पर गुणों से अनादर।
परनिंदा-अपमान आदि करते...जिससे वाद-विवाद कलह होते।।

आप तो समतल स्वच्छ दर्पण सम...आपके दर्शन से होता है ज्ञान।
हम तो विषमतल अस्वच्छ दर्पण...जिससे हमें न होता सही परिज्ञान।।

आगम आध्यात्मिक जीवंत आप...आपसे परिज्ञान होता आत्मरूप।

अनुभव बिन आत्मा का न ज्ञान होता...चखे बिना यथा मीठा का ज्ञान न होता।।

आपसे आत्मा की कल्पना होती...जिससे श्रद्धा व प्रज्ञा बढ़ती।
श्रद्धा-प्रज्ञा से ही चर्या होती (बढ़ती)...जिससे आत्मा की अनुभूति होती।।

भावी रूप से भगवान् आप हो...मानव देह में विद्यमान अभी हो।
आप सम बनना हमारा लक्ष्य है...'कनक' वंदे तव गुण प्राप्ति हो।।

(मेरे जैन-अजैन आचार्य, वैज्ञानिक एवं गृहस्थ शिष्यों ने अनेक बार निवेदन किया कि आपके समझाने पर ही समझ में आता है नहीं तो ग्रंथों के वाचन से भी समझ में नहीं आता है। इस कथन से प्रेरित होकर यह कविता बनी।)

चितरी, दिनांक 18.11.2017, मध्याह्न 2.23

स्वाध्याय परम तप क्यों!?

(हे! जिनवाणी तेरे अमृत कथन से अनंत लाभ)

(चाल : रे पारस!....., सायोनारा....., तुम दिल की.....)

हे! जिनवाणी तेरे अमृत/(पावन) कथन...सत्य समतामय दिव्य वचन।
अनेकांत सिद्धांत/(मय) स्याद्वाद वचन...आत्मा को परमात्मा बनाने का वर्णन।।

सर्वज्ञ सुता हो जिनवाणी माता...गणधर से ले भव्य जीवों की माता।
आपसे ही आत्मा की जागृति होती...श्रद्धा-प्रज्ञा व चर्या बढ़ती।। (1)

अशुभ-शुभ व शुद्ध को जानते...पाप-पुण्य व मोक्ष को मानते।
ग्रहणीय-त्यजनीय-उपेक्षणीय...ज्ञात होता है ज्ञान-ज्ञेय-श्रेय।।

सत्य-असत्य का परिज्ञान होता...स्व-पर विश्व का परिज्ञान होता।
हिताहित विवेक भी जागृत होता...इससे ही भेद-विज्ञान होता।। (2)

इससे स्वयं का परिज्ञान होता...मैं हूँ सच्चिदानंदमय परमात्मा।
तन-मन-इंद्रिय परे मैं आत्मा...द्रव्य-भाव-नोकर्म परे शुद्धात्मा।।

इससे ही होता है आत्मविश्वास...आत्म उपलब्धि हेतु होता साहस।
जिससे बढ़ती धीरता-स्थिरता...स्व-निर्भरता व निर्भय दृढ़ता।। (3)

अन्य प्रति न होता राग-द्वेष-मोह...छूट जाते है ईर्ष्या-द्वेष-द्रोह।
मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थ भाव...उत्पन्न होते है आत्म गुण समूह।।
इससे बढ़ती उदारता व शुचिता...संवेदनशीलता-क्षमा-सहिष्णुता।
सरल-सहज आत्मविशुद्धि बढ़ती...जिससे समता-शांति बढ़ती।। (4)
निंदा-प्रशंसा व हानि-लाभ से...ख्याति-पूजा-प्रसिद्धि लोभ से।
शत्रु-मित्र व अपना-पराया से...अप्रभावी गुण आता आपके वचन से।।
इससे ही पाप का न होता है बंध...सातिशय पुण्य कर्म का बंध।
संवर-निर्जरा से मोक्ष भी मिलता...अनंत अक्षय आत्म-वैभव मिलता।। (5)
अन्यथा न मिलता अनंत वैभव...शिक्षा-राजनीति न व्यापार से संभव।
किन्तु अज्ञानी मोही आप को न मानते...अनंत संसार में दुःखों को भोगते।।
तुझे तो मानेंगे जो (होते) निकट भव्य...पापी जीवों को न सुहाता तेरा संदेश।
तेरे ज्ञानामृत से जीव बनते जिनेंद्र...'कनकनंदी' सेवन करे तेरा अमृत।। (6)

चितरी, दिनांक 19.11.2017, रात्रि 07.37

संदर्भ-

गुरु एवं शास्त्र की सेवा साक्षात् भगवान् की सेवा

सम्प्रत्यस्ति न केवली किल किलौ त्रैलोक्यचूडामणि-
स्तद्वाचः परमास्तेऽत्र भरतक्षेत्रे जगद्द्योतिका।
सद्रत्नत्रयधारिणो यतिवरांस्तेषां समालम्बनं।
तत्पूजा जिनवाचिपूजनमतः साक्षाज्जिनः पूजितः।। पद्म.पंच.

वर्तमान में इस कलिकाल में तीन लोक के पूज्य केवली भगवान् इस भरतक्षेत्र में नहीं है तथापि समस्त भरतक्षेत्र में जगत्प्रकाशिनी केवली भगवान् की वाणी मौजूद है तथा उस वाणी के आधार स्तंभ श्रेष्ठ रत्नत्रयधारी मुनि भी हैं। इसलिये उन मुनियों की पूजन तो सरस्वती की पूजन है तथा सरस्वती पूजन साक्षात् केवली भगवान् की पूजन है।

केवली (अरिहंत, तीर्थंकर, सिद्ध) हमारे सर्वोच्च आदर्श-पूजनीय होने पर भी

उनकी साक्षात् उपलब्धि-संगति-पूजा-उपासना-देशना वर्तमान पंचम काल में भरतक्षेत्र में संभव नहीं है किन्तु उनके द्वारा सच्चा-अच्छा मार्गदर्शक उपदेश प्राचीन आर्ष-आगम में लिपिबद्ध है और उस मार्ग में यथाशक्ति यथायोग्य गमन करने वाले साधक-साधु हैं। अतः ऐसे जीवंत साधुओं की उपासना (सेवा, संगति, उपदेश ग्रहण, आहारादि 4 प्रकार के दान देना आदि) करना साक्षात् सरस्वती (आगम-आध्यात्मिक ग्रंथ) की पूजा है और सरस्वती की पूजा साक्षात् सर्वज्ञ भगवान् की पूजा है, परन्तु खेद का विषय यह है कि भगवान् के प्रतीक स्वरूप मूर्ति-मंदिर-तीर्थक्षेत्र आदि के लिए जितना समय-श्रम-धन-मन साधनों का उपयोग करते हैं उसके अनुपात से साधु एवं सरस्वती के लिए कम उपयोग करते हैं जिससे स्वास्थ्य एवं विकास अनुपात से कम हो रहा है।

शास्त्राध्ययन के उद्देश्य एवं फल

बोधिः समाधि परिणाम शुद्धिः स्वात्मोपलब्धि शिवसौख्य सिद्धिः।
चिन्तामणिं चिन्तित वस्तु दाने, त्वां वन्द्यमानस्य ममास्तु देवी।।

हे माँ सरस्वती देवी! आपको वंदन करने वाले मुझे ज्ञान, समाधि, परिणामों में विशुद्धि, स्वात्मा की उपलब्धि, मोक्ष सुख की सिद्धि होवे। (भावना द्वात्रिंशतिका)

ये यजन्ते श्रुतं भक्त्या ते यजन्तेऽन्तसा जिनम्,
नहिं किंचिदन्तरं प्राहुराप्ता हि श्रुतदेवयो। (44) आशा.साग.धर्मा.

जो भक्तिपूर्वक श्रुताराधना करते हैं वे प्रकारान्तर से जिनेन्द्र देव की अर्चना ही कर रहे हैं। जिनेन्द्र देव की भक्ति और श्रुत की आराधना में कोई अंतर नहीं है।

(पं. आशाधर जी सा.ध. 44)

उत्तरोत्तर दुर्लभ : बोधि (आत्म-ज्ञान)

देशजातिकुलरूपकल्पताजीवितव्यबलवीर्यसम्पदः।
देशनाग्रहणबुद्धिधारणाःसन्तिदेहिनिवहस्य दुर्लभाः।। (69) अमित.श्रावका.

धर्म धारण करने के योग्य देश-जाति-कुल-रूप-सौंदर्य-दीर्घायु-बल-वीर्य-संपदा, जिनवाणी का उपदेश, उसके ग्रहण करने की बुद्धि और उसे धारण करने की शक्ति इतनी विशेषताओं का मिलना जीव-समुदाय को उत्तरोत्तर दुर्लभ है।

हन्त तासु सुखदान सुखदानकोविदा ज्ञानदर्शनचरित्र सङ्गतिः।
लभ्यते तनुभृताऽतिकृच्छतः कामिनीष्विव कृतज्ञता सती।। (70)

आचार्य खेद प्रकट करते हुए कहते हैं कि उपर्युक्त सामग्री में भी सुख देने में प्रवीण ऐसी सम्यग्ज्ञान दर्शन और चरित्र की संगति यह प्राणी अति कष्ट से प्राप्त करता है, जैसे कि स्त्रियों में सुंदर कृतज्ञता अति कष्ट से पायी जाती है।

साधुलोक महिता प्रमादतो बोधिरत्र यदि जातु नश्यति।
प्राप्यते न भविना तदा पुनर्नीरधाविव मनोरमो मणिः।। (71)

इस लोक में साधुजनों से पूजित रत्नत्रय की प्राप्तिरूप यह बोधि यदि कदाचित् प्रमाद से नष्ट हो जाती है, तो वह फिर संसारी जीव को नहीं प्राप्त होती है। जैसे कि समुद्र में गिरा हुआ मनोहर मणि पुनः नहीं प्राप्त होता है।

हन्त बोधिमपहाय शर्मणो योऽधमो वितनुते धनार्जनम्।
जीविताय विषवल्लरीं स्फुटंसेवतेऽमृतलतामपास्य सः।। (72)

यह बड़े दुःख का विषय है कि ऐसी अतिदुर्लभ बोधि को पा करके भी जो अधम पुरुष उसे छोड़कर सुख के लिए धन का उपार्जन करता है, वह अमृतलता को छोड़कर जीवित रहने के लिए नियम से विषवेलि का सेवन करता है।

योऽत्र धर्ममुपलभ्य मुञ्चते क्लेषमेष लभतेऽतिदारुणम्।
यो निदानमनघं व्यपोहते खिद्यते स नितरां किमद्भुतम्।। (73)

जो मनुष्य इस भव में ऐसे उत्तम धर्म को पाकर के छोड़ता है, वह अति दारुण क्लेश को पाता है। जो निर्दोष धन के भंडार को छोड़ता है, वह अत्यंत खेदित होता ही है, इसमें क्या आश्चर्य है।

मुञ्चता जनन मृत्युयातनां गृह्वता च शिवतातिमुत्तमाम्।
शाशवतीं मतिमता विधीयते बोधिरद्रिपतिचूलिकास्थिरा।। (74)

जो मतिमान् पुरुष जन्म-मरण की यातना को छोड़ता है और उत्तम कल्याण-परंपरा को ग्रहण करता है, वह सुमेरु की स्थिर चूलिका के समान रत्नत्रय की प्राप्तिरूप बोधि को शाश्वत नित्य बनाता है।

संसार भ्रमण से परे मोक्षमार्ग

(जैन धर्म का सार : स्व-आत्मा का उद्धार)

(चाल : 'छहढाला' दूसरी ढाल....., जय हनुमान....., हनुमान चालीसा.....)

सत्य-असत्य का स्वरूप जानो, आत्मा-परमात्मा रूप पहचानो।
स्व-स्वरूप व पर-स्वरूप को जानो, तब ही होगा सही श्रद्धान।।

जानकारी मात्र से न होता श्रद्धान, लौकिक पढ़ाई से न होता ज्ञान।
देखादेखी करने से न होता धर्म, आगम अनुभव से होता श्रद्धान।। (1)

देव-शास्त्र-गुरु का करो श्रद्धान, षट् द्रव्य-सप्त तत्त्व पहचानो।
लौकिक परे आध्यात्मिक जानो, स्व-आत्म स्वरूप को चैतन्य मानो।।

अन्यथा न होगा सही श्रद्धान, श्रद्धान बिन न होगा सम्यग्ज्ञान।
दोनों बिन न होगा सही आचरण, धार्मिक क्रियाकाण्ड होंगे बाह्य/(ढोंग) आचरण।। (2)

पद्धरि छंद...(मिथ्यादर्शन) (छहढाला)

ऐसे मिथ्यादृग-ज्ञानचरण, वश भ्रमत भरत दुःख जन्म-मरण।
तातें इनको तजिये सुजान, सुन तिन संक्षेप कहूँ बखान।।

मैं सुखी-दुःखी मैं रंक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव।
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुमग मूरख प्रवीन।। (3)

तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान।
रागादि प्रगट ये दुःख देन, तिन ही को सेवत गिनत चैन।।

शुभ-अशुभ बंध के फल मंझार, रति-अरति करे निजपदविसार।
आतमहित हेतु विराग ज्ञान, ते लखैं आपको कष्टदान।। (4)

(मिथ्याज्ञान)

रोक न चाह निज शक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय।
याही प्रतीतिजुत कछुकज्ञान, सो दुःखदायक अज्ञान जान।।

जो ख्याति-लाभ-पूजादि चाह, धरिकरन विविधविध देहदाह।

आतम अनात्म के ज्ञानहीन, जे जे करनी तन करन छीन।। (5)

(मिथ्याचारित्र)

ते सब मिथ्याचारित्र त्याग, अब आतम के हित पंथ लाग।
जग-जाल-भ्रमण-कोदेहु त्याग, अब दौलत निज आतम सुपाग।।

(नरेंद्र/जोगीरासा छंद)

बहिरातम अंतर आतम, परमातम जीव त्रिधा है।
देह-जीव को एक गिनै, बहिरातम तत्त्व मुधा है।। (6)

उत्तम-मध्यम-जघन त्रिविध के, अंतर आतम ज्ञानी।
द्विविध संग बिन शुद्ध उपयोगी, मुनि उत्तम निजध्यानी।।

मध्यम अंतर आतम है जे, देशव्रती अनगारी।
जघन कहे अविरत समदृष्टि, तीनों शिव-मगचारी।। (7)

परमात्मा

सकल-निकल परमातम द्वैविध, तिन में घाति निवारी।
श्री अरहंत सकल परमातम, लोकालोक निहारी।।

ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्म-मल, वर्जित सिद्ध महंता।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगे शर्म अनंता।। (8)

बहिरातमता हेय जानि तजि, अंतर-आतम हूजैं।
परमातम को ध्याय निरंतर, जो नित आनंद पूजैं।।

मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान-चरित्रा।
सम्यकता न लहै सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा।। (9)

'दौल' समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै।
यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक्नहिं होवै।।

(हरिगीतिका)

परमाण नय निक्षेप को, न उद्यत अनुभव मैं दिखै।
दृग-ज्ञान-सुख-बलमय सदा, नहिं आन भाव जु मो विखै।। (10)

मैं साध्य-साधक मैं अबाधक, कर्म अरु तसु फल नितैं।
चित्-पिण्ड-चण्ड-अखण्ड-सुगुण-करण्ड-च्युत पुनि कलनितैं।।

यह ही धर्म का है परम मर्म, देह को मैं मानना है मिथ्याश्रद्धान।
सत्ता-संपत्ति व प्रसिद्धि डिग्री, इससे परे होती आत्मा की सिद्धि।। (11)

राग-द्वेष-मोह परे होता शुद्धात्मा, शुद्धात्मा प्राप्ति हेतु धर्मसाधना।
धर्म से ही मिलते स्वर्ग व मोक्ष, 'कनक' का लक्ष्य परम मोक्ष।। (12)

चितरी, दिनांक 20.11.2017, मध्याह्न 01.29

परम वैभव प्राप्ति के उपाय

(परम पावन जीव ही बनते हैं परमात्मा)

(चाल : आत्मशक्ति.....)

आत्मज्ञान/(स्व, मैं ज्ञान) ही है सर्वोच्च ज्ञान अन्यथा सभी कुज्ञान।
आत्मविश्वास ही है सही विश्वास अन्यथा सभी अभिमान।। (ध्रुव)

आत्मा की पवित्रता ही है सही आचरण अन्यथा सभी मिथ्याचार।
आत्मा की उपलब्धि ही परम उपलब्धि अन्यथा होता है संसार।।

सच्चिदानंद है स्व-शुद्धात्मा उसका ज्ञान है सही ज्ञान।
आत्मा ज्ञान सह स्व-श्रद्धान जिससे होता है आत्मविश्वास।। (1)

राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोध रिक्त होना ही है आत्मा की पवित्रता।
इस हेतु ही जो होती साधना उसे ही कहते है सदाचरण।।

इससे ही जीवों का होता परम विकास जिससे जीव बनते सच्चिदानंद।
अनंत ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्यादि सहित जीव बनते है शुद्ध-बुद्ध।। (2)

इससे अतिरिक्त राजा-महाराजा चक्रवर्ती से लेकर इंद्र तक।
नहीं होते है श्रेष्ठ-ज्येष्ठ-पावन दार्शनिक से लेकर वैज्ञानिक तक।।

इसलिए तो राजा से इंद्र तक शुद्ध-बुद्ध-परमात्मा को करते नमन।
उनकी प्रार्थना-आराधना करते उनका करते चिंतन-मनन।। (3)

उनके गुण-गण प्राप्ति हेतु चक्रवर्ती भी त्यागते राज्य-वैभव।
किन्तु परमात्मा चक्रवर्ती बनने का नहीं करते किंचित् भी विकल्प।।
तीन लोक व तीन काल में परमात्मा समान कोई न होता वैभव संपन्न।
परमात्मा ही परमात्मा सम होते अन्य न कोई होते उनके सम।। (4)
तथापि परमात्मा न गर्व करते न करते ईर्ष्या-द्वेष व घृणा।
शत्रु-मित्र भेदभाव से रहित सबके प्रति होती शुद्ध करुणा/(शुद्ध अहिंसा)।।
जन्म-जरा-मृत्यु रहित होते तथाहि क्षुधा-तृष्णा व आधि-व्याधि से।
शरीर-इंद्रिय-मन रहित होते समस्त संक्लेश-विकल्प-संक्लेश से।। (5)
पढ़ाई-नौकरी-व्यापार-राजनीति-कृषि-शिल्पादि कुछ न करते।
आक्रमण-युद्ध व वर्चस्व रहित तथाहि फैशन-व्यसन-भोगोपभोग से।।
तीन लोक के तीन काल के समस्त देव-मनुष्यों के वैभव/(सुख) से।
अनंत गुणीत वैभव/(सुख) को अनुभव करते है वे निज आत्मा से।। (6)
इसलिए परमात्मा ही स्वतंत्र-संपूर्ण-निराकुल व अव्याबाध।
समस्त दीन-हीन अहंकार रहित स्वयं में ही वे स्वयं होते लीन/(आधीन)।।
हर जीव में ऐसे होते है वैभव किन्तु प्राप्त करते जो होते परम पावन।
अन्य कोई उपाय न संभव कभी अतः 'कनक' बना रहा स्वयं को पावन।। (7)

चितरी, दिनांक 22.11.2017, रात्रि 08.16

संदर्भ-

अरहंत भगवान् का स्वरूप

णट्ठचदुघाइकम्मो दंसणसुहणाणवीरियमईओ।
सुहदेहत्थो अप्पा सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो।। (50)

That pure soul existing in an auspicious body, possessed of (infinite) faith, happiness, knowledge and power which has destroyed the four Ghatiya Karmas, is to be meditated on as an Arihant.

चार घातिया कर्मों को नष्ट करने वाला, अनंत दर्शन, सुख, ज्ञान और वीर्य का धारक, उत्तम देह में विराजमान और शुद्ध ऐसा जो आत्मा है वह अरिहंत है उसका ध्यान करना चाहिए।

अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत वीर्य, अनंत विरति, क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग और क्षायिक उपभोग आदि प्रगट हुए अनंत गुण स्वरूप होने से जिन्होंने यही पर सिद्ध स्वरूप प्राप्त कर लिया है, स्फटिकमणि के पर्वत के मध्य से निकलते हुए सूर्य बिंब के समान जो देदीप्यमान हो रहे हैं, अपने शरीर प्रमाण होने पर भी जिन्होंने अपने ज्ञान के द्वारा संपूर्ण विश्व को व्याप्त कर लिया है, अपने ज्ञान में ही संपूर्ण प्रमेय रहने के कारण प्रतिभासित होने से जो विश्वरूपता को प्राप्त हो गये हैं। संपूर्ण आमय अर्थात् रोगों के दूर हो जाने के कारण जो निरामय है, संपूर्ण पापरूपी अंजन के समूह के नष्ट हो जाने से जो निरंजन है और दोषों की कलाएँ अर्थात् संपूर्ण दोषों से रहित होने के कारण जो निष्फल है, ऐसे उन अरिहंतों को नमस्कार हो।

सिद्ध भगवान् का स्वरूप

णट्ठट्ठकम्मदेहो लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा।
पुरिसायारो अप्पा सिद्धो ज्झाएह लोयसिहरत्थो।। (51)

Meditate on the Siddha the soul which is bereft of the bodies produced by eight kinds of Karmas, which is the seer and knower of Loka and Aloka, which has a shape like a human being and which stays at the summit of the universe.

नष्ट हो गया है अष्ट कर्मरूप देह जिसके, लोकाकाश तथा अलोकाकाश का जानने देखने वाला, पुरुष के आकार का धारक और लोक के शिखर पर विराजमान ऐसा जो आत्मा है वह सिद्ध परमेष्ठी है इस कारण तुम उसका ध्यान करो।

अन्याकाराप्ति हेतु र्न च भवति परो, येन तेनाल्पहीनः।
प्रागात्मोपात्तदेह, प्रतिकृतिरुचिराकार एव ह्यमूर्तः।।
क्षुतृष्णाश्वासकास, ज्वरमरणजरानिष्ट योग प्रमोहः।
व्यापत्याद्युग्रदुःखप्रभवभवहतेः कोऽस्य सौख्यस्य माता।। (6)

जिस मनुष्य शरीर से यह जीव मुक्त होता है वह उस जीव का अंतिम शरीर कहलाता है। उसी को चरम शरीर कहते हैं। मुक्त होने पर इस जीव का आकार चरम शरीर के आकार से भिन्न आकार नहीं हो सकता, न तो वह समस्त लोक में व्यापक हो सकता है और न वटवृक्ष के बीज के समान अणुमात्र ही हो सकता है। क्योंकि वहाँ आकार बदलने का कोई कारण नहीं है। किन्तु अंतिम शरीर के परिमाण से कुछ आकार कम होने का कारण है और वह यह है कि संसार परिभ्रमण में इस जीव का आकार कर्मों के उदय से बदलता था। अब कर्मों के नष्ट हो जाने से आकार बदलने वाला कोई कारण नहीं रहा तथा उसका परिमाण अंतिम शरीर से कुछ कम रहता है। क्योंकि शरीर के जिन-जिन भागों में आत्मा के प्रदेश नहीं है उतना परिमाण घट जाता है। शरीर के भीतर, पेट, नाक, कान आदि भाग ऐसे हैं जिनमें पोले भाग में आत्मा के प्रदेश नहीं हैं। इसलिये आचार्य कहते हैं कि अन्य ऐसे कारण हैं जिनसे यह सिद्ध हो जाता है कि मुक्त जीव का परिमाण अंतिम शरीर के परिमाण से कुछ कम है। यह कमी आकार की अपेक्षा से नहीं है लेकिन घन फल की अपेक्षा से है तथा मुक्त अवस्था में जीव का आकार अंतिम शरीर के समान अत्यंत दैदीप्यमान रहता है।

एव शब्द निश्चयवाचक है और हि शब्द स्पष्टता सूचित करने के लिए है, इससे सिद्ध होता है कि मुक्त अवस्था में जीव का आकार अंतिम शरीर के आकार समान है और उनका परिमाण अंतिम शरीर से कुछ कम है। मुक्त जीव का यह आकार और यह परिमाण निश्चित है, स्पष्ट है। इसके सिवाय अन्य कोई आकार तथा अन्य कोई परिमाण हो नहीं सकता। इसके सिवाय मुक्त अवस्था में वह शुद्ध आत्मा अमूर्तिक रहता है। रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द रूप पुद्गल परिणति को मूर्ति कहते हैं। ऐसी मूर्ति जिसके न हो उसको अमूर्ति कहते हैं। सिद्धों में रूप, रस, गंध, स्पर्श, रूप मूर्ति नहीं है। इसलिये वे अमूर्ति स्वरूप हैं अथवा अमूर्ति भी पाठ है जिनके रूप रसादि स्वरूप मूर्ति हो उनको मूर्त कहते है तथा जिनके ऐसी मूर्ति न हो उनको अमूर्त कहते हैं। उन सिद्ध परमेष्ठी की परिणति रूप, रस, गंध स्पर्श स्वरूप नहीं है इनसे सर्वथा रहित है इसलिए वे अमूर्त हैं।

इसके सिवाय वे भगवान् क्षुधा, तृषा, श्वास, कास, दमा ज्वर, मरण, जरा

(बुढ़ापा) अनिष्ट योग, मोह अनेक प्रकार की आपत्तियाँ उत्पन्न होती हैं ऐसे संसार के परिभ्रमण को उन सिद्ध भगवान् ने नाश कर दिया है अथवा कर्मों के नाश होने से वह संसार अपने आप नष्ट हो गया है। उस संसार के नष्ट होने से सिद्धों को अनंत सुख की प्राप्ति हो गई है, उस सुख का परिमाण भला कौन कर सकता है? अर्थात् कोई नहीं। सिद्धों का सुख अनंत है उनका परिमाण कभी किसी से नहीं हो सकता।

सिद्धों का सुख

आत्मोपादानसिद्धं स्वयमतिशयवद्वीतवाधं विशालं।
वृद्धिह्रासव्यपेतं, विषयविरहितं, निःप्रतिद्वंदभावम्।।
अन्यद्रव्यानपेक्षं, निरुपममितं, शाश्वतं सर्वकालं।
उत्कृष्टानन्तसारं, परमसुखमतस्तस्य सिद्धस्यजातम्।। (7)

भगवान् सिद्ध परमेष्ठी के जो सुख होता है वह केवल आत्मा से ही उत्पन्न होता है। अन्य किसी प्रकृति आदि से उत्पन्न नहीं होता इसीलिये वह सुख अनित्य नहीं होता वह सुख स्वयं अतिशय युक्त होता है। समस्त बाधाओं से रहित होता है। अत्यंत विशाल वा विस्तीर्ण होता है। आत्मा के समस्त प्रदेशों में व्याप्त होकर कभी घटता है न बढ़ता है। वृद्धि और ह्रास दोनों से रहित हो सांसारिक सुख विषय से उत्पन्न नहीं होता किन्तु सब प्रकार के विषयों से रहित स्वाभाविक होता है। सुख का प्रतिद्वंदी दुःख है। उन दुःखों-से मिला हुआ है। परन्तु सिद्धों का सुख सदा सुख रूप ही रहता है, जीवों का सुख, सातावेदनीय कर्म के उदय से होता है तथा पुष्पमाला चंदन, भोजन आदि बाह्य सामग्री से उत्पन्न होता है परन्तु सिद्धों का सुख उपमा रहित है, अनंत है। विनाश रहित है इसीलिये वह सदा बना रहता है। वह सुख परम सुख कहलाता है अर्थात् इन्द्रादिक के सुख से भी अत्यंत अतिशय युक्त वा बढ़कर है। जिन सिद्धों का लक्षण वा उनके गुण पहले निरूपण कर चुके हैं और जो लोकाकाश के अग्रभाग पर विराजमान हैं, ऐसे सिद्धों का अनंत सुख ऊपर लिखे अनुसार होता है। अभिप्राय यह है कि सिद्धों का सुख संसारी जीव के सुखों से अत्यंत विलक्षण है। सिद्धों का सुख वास्तविक सुख है और इसीलिये वह सर्वोत्तम है।

प्रेम! तेरी अजस्र धारा

(प्रेम के अशुभ-शुभ-शुद्ध स्वरूप-अशुभ राग-शुभ राग-शुद्धात्मा रमण)

(चाल : गंगा तेरा पानी अमृत.....)

प्रेम! तेरी अजस्र धारा...सर्वत्र बहती जाये।
अशुभ-शुभ व शुद्ध रूप में...सर्वत्र बहती जाये।। (ध्रुव)

राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोध युक्त...तेरी अशुभ धारा...
इस धारा में बहते रहते...संसारी जीव सारा...

एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक...जो होते अज्ञानी मोही...
संकीर्ण स्वार्थी अनुदार जीव...भोगते हैं दुःख भारी...(1)...

आहार-भय-मैथुन-परिग्रह से...होते हैं वे आसक्त...
इस हेतु वे पाप-व्यसन सेवते...न होते कभी तृप्त...

अन्याय-अत्याचार-भ्रष्टाचार...करते युद्ध आक्रमण...
सर्व पाप जीव ऐसे करते...अतः (तेरी) ये धारा अपवित्र/(त्यजनीय)...(2)...

इससे परे तेरी शुभ धारा...जो दान-दया सहित...
आत्मविश्वास-ज्ञान-चारित्र युक्त...संवेग-वैराग्य सहित...

स्व-पर विश्व कल्याण सहित...मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थ...
शुद्ध स्वरूप प्रेम प्राप्त करना ही...ऐसे जीवों के परम लक्ष्य...(3)...

इससे भी परे तेरी शुद्ध धारा...जो राग-द्वेष-मोह मुक्त...
शुद्ध-बुद्ध व आनंद रूप जो...सच्चिदानंद से युक्त...

अनंत ज्ञान-दर्श-सुख-वीर्य युक्त...जन्म-जरा-मरण मुक्त...
आत्म रमण रूप परम प्रेम में/(से)...जीव भोगते (स्व) आत्मसुख...(4)...

ऐसी धारा ही परम उपादेय जो...जीवों के निज/(शुद्ध) रूप...
इस हेतु ही शुभ धारा ग्रहणीय...त्यजनीय अशुद्ध स्वरूप...

इससे ही सभ्यता-संस्कृति जन्मी...धर्म/(पुण्य) से ले आध्यात्मिक...

पुण्य-पुरुष से ले आध्यात्मिक पुरुष...इसके होते हैं जनक...(5)...

अशुद्ध धारा तेरी विध्वंसक रूप...जो बहा लेती सभ्यता-संस्कृति...
शुभ धारा तो स्वच्छ मंदाकिनी सम...शुद्ध धारा है अमृत सम...

अशुभ त्याग से शुभ प्राप्ति...शुभ से प्राप्त शुद्ध धारा...
शुभ बिन न अशुभ भी नशे...कैसे मिले तेरी शुद्ध धारा...(6)...

शुद्ध धारा प्राप्ति हेतु चक्री भी...त्यागते राज्य वैभव...
शुद्ध धारा प्राप्त करने हेतु...'कनक' बना आध्यात्मिक संत...(7)...

चितरी, दिनांक 17.11.2017, अपराह्न 5.29

संदर्भ-

शुभ अशुभ एवं शुद्ध उपयोगात्मक जीव

जीवो परिणमदि जदा सुहेण वा सुहो असुहो।
सुद्धेण तदा सुद्धो हवदि हि परिणामसब्भावो।। (9)

The Soul whose nature is amenable to modification comes to be auspicious, inauspicious or pure according as it develops auspicous, inauspicious or pure states (of consciousness).

आगे यह उपदेश करते हैं कि शुभ, अशुभ तथा शुद्ध ऐसे तीन प्रकार के उपयोग से परिणमन करता हुआ आत्मा शुभ, अशुभ तथा शुद्ध उपयोग स्वरूप होता है।

(जदा) जब (परिणाम सब्भावो) परिणमन स्वभावधारी (जीवो) यह जीव (सुहेण) शुभ भाव से (वा असुहेण) अथवा अशुभ भाव से (परिणमदि) परिणमन करता है तब (सुहो असुहो) शुभ परिणामों से शुभ तथा अशुभ परिणामों से अशुभ (हवदि) हो जाता है। (सुद्धेण) जब शुभ भाव से परिणमन करता है (तदा) तब (हि) निश्चय से (सुद्धो) शुद्ध होता है।

इसी का भाव यह है कि जैसे स्फटिक मणि का पत्थर निर्मल होने पर भी जपा पुष्प आदि लाल, काली, श्वेत उपाधि के वश से लाल, काला, सफेद रंग रूप परिणमन हो जाता है, वैसे यह जीव स्वभाव से शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव होने पर भी व्यवहार

करके गृहस्थ अपेक्षा यथासंभव राग सहित सम्यक्त्वपूर्वक दान-पूजा आदि शुभ कार्यों के करने से तथा मुनि की अपेक्षा मूल व उत्तर गुणों को अच्छी तरह पालन रूप वर्तने में परिणमन करने से शुभ है, ऐसा जानना योग्य है। मिथ्यादर्शन सहित अविरति भाव, प्रमाद भाव, कषाय भाव व मन वचन-काय योगों के हलन-चलन रूप भाव, ऐसे पाँच कारण रूप अशुभोपयोग में वर्तन करता हुआ अशुद्ध जानने योग्य है तथा निश्चल रत्नत्रयमल शुद्ध उपयोग से परिणमन करता हुआ शुद्ध जानना चाहिए। इसका क्या प्रयोजन है सो कहते हैं कि सिद्धांत में जीव के असंख्यात लोक प्रमाण परिणाम है। मध्यम वर्णन की अपेक्षा मिथ्यादर्शन आदि 14 गुणस्थान रूप से कहे गये हैं। इस प्रवचनसार प्राभृत शास्त्र में उन ही गुणस्थानों को संक्षेप से शुभ-अशुभ तथा शुद्ध उपयोग रूप से वर्णन किया गया है। सो ये तीन प्रकार के उपयोग 14 गुणस्थानों में किस तरह घटते हैं सो कहते हैं-मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र इन तीन गुणस्थानों में तारतम्य से कमती-कमती अशुभ उपयोग है। इसके पीछे असंयत सम्यग्दृष्टि, देशविरत तथा प्रमत्त संयत ऐसे तीन गुणस्थानों में तारतम्य से शुभोपयोग है। उसके पीछे अप्रमत्त से लेकर क्षीण कषाय तक छः गुणस्थानों में तारतम्य से शुद्धोपयोग है। उसके पीछे सयोगी जिन और अयोगी जिन इन दो गुणस्थानों में शुद्धोपयोग का फल है, ऐसा भाव है।

समीक्षा-जीव परिणाम स्वभाव के कारण परिणमन करता है। कर्म सहित जीव के तीन प्रकार के परिणमन (परिणाम) होते हैं। यथा-अशुभ, शुभ एवं शुद्ध। परन्तु कर्म रहित जीव में केवल शुद्ध परिणमन होता है। यदि जीव अशुभावस्था में है तो उसका परिणमन अशुभ होगा, शुभ होगा तो शुभ परिणमन होगा और जब शुद्ध होगा तो परिणमन शुद्ध होगा। इससे जो एकांतवादी कहते हैं कि जीव हर दृष्टिकोण से हर समय शुद्ध है। उसका मत निरसन हो जाता है। यदि हर नयापेक्षा जीव शुद्ध है तो संसार का ही अभाव हो जायेगा, संसार का अभाव होने से मोक्ष का भी अभाव हो जायेगा क्योंकि मोक्ष बंधपूर्वक होता है। यदि संसार ही नहीं है तो मोक्षमार्ग की आवश्यकता नहीं रहेगी और मोक्षमार्ग का अभाव हो जायेगा, मोक्षमार्ग के अभाव से तीर्थंकर का तीर्थ प्रवर्तन, उपदेश देना, उपदेश सुनना, गुरु-शिष्य संबंध, पूज्य-पूजक संबंध तथा अरहंत, आचार्य, उपाध्याय और साधु का भी अभाव हो जायेगा। जो

एकांतवादी कहते हैं कि हर दृष्टिकोण से जीव शुद्ध है उनका वचन ही स्व-वचन बाधित है क्योंकि वे स्वयं अशुद्ध हैं और यदि शुद्ध होते तो शरीरधारी नहीं होते, शुद्ध-बुद्ध और सर्वज्ञ होते पर यह प्रत्यक्ष, अनुभव और आगम बाधित है। आचार्य कुंदकुंद देव ने समयसार में इसी भाव का कथन निम्न प्रकार किया है-

एदेसु य उवओगो तिविहो सुद्धो णिरंजणो भावो।
जंसो करेदी भावं उवओगे तस्स सो कत्ता।। (97) पृ.95

यद्यपि शुद्धनय की अपेक्षा से आत्मा का उपयोग शुद्ध है, तो भी अनादिकाल से इन उपर्युक्त तीन भाव रूप परिणामों में से आत्मा जिस भाव को करता है उस समय उसका कर्त्ता होता है।

जं कुणदि भावमादा कत्ता सो होदि तस्स भावस्स।
णाणिस्स दु णाणमओ अण्णाणमओ अणाणिस्स।। (134) पृ.132

यह आत्मा जिस समय जैसा भाव करता है उस भाव का कर्त्ता वह आत्मा होता है, अतः ज्ञानी के ज्ञानमय और अज्ञानी (संसारी) के अज्ञानमय भाव होता है।

अण्णाणमओ भावो अणाणिणो कुणदि तेण कम्माणि।
णाणमओ णाणिस्स दु ण कुणदि तम्हा दु कम्माणि।। (135)

अज्ञानी-रागी-द्वेषी जीव के आर्त्तरौद्र रूप अज्ञानमय भाव ही होता है जिससे यह कर्मों को करता रहता है, किन्तु विरागी या समाधिस्थ जीव के ज्ञानमय भाव ही होते हैं (आर्त्तरौद्र परिणाम से रहित शुद्ध ज्ञानरूप-परिणाम ही होता है।) अतः वह ज्ञानी किसी भी प्रकार का कर्म नहीं करता है।

णाणमया भावाओ णाणमओ चेव जायदे भावो।
जम्हा तम्हा णाणिस्स सव्वे भावा दु णाणमया।। (136)
अण्णाणमया भावा अण्णाणो चेव जायदे भावो।
तम्हा सव्वे भावा अण्णाणमया अणाणिस्स।। (137)

ज्ञानी जीव के सब ही भाव ज्ञानमय ही होते हैं क्योंकि ज्ञानमय भाव से ज्ञानमय भाव ही उत्पन्न होता है। इसी प्रकार अज्ञानमय भाव से अज्ञानमय भाव ही उत्पन्न होता है, अतः जीव के सभी भाव अज्ञानमय होते हैं।

जैसे सोने की सिल्ली से कुण्डलादिक आभूषण बनते है और लोहे के टुकड़े

से कड़ाही आदि बनती है। उसी प्रकार अज्ञानी जीव के अज्ञानमय भाव से अनेक प्रकार के अज्ञान भाव होते हैं। किन्तु ज्ञानी जीव के सब ही भाव ज्ञानमय होते हैं।

जीवों के जो अतत्त्व रूप श्रद्धान होता है, वह मिथ्यात्व का उदय है। उन जीवों के जो त्याग भाव का अभाव है वह असंयम का उदय है। इसी प्रकार उनका जो स्वरूप का अन्यथा जानना है वह अज्ञान का उदय है तथा जो जीवों के उपयोग का मैलापन है वह कषाय का उदय है और जो जीवों के शुभाशुभ रूप वचन काय की उत्साहात्मक चेष्टा विशेष होती है वह योग का उदय है। उपर्युक्त पाँचों में से किसी के भी होने पर जो कर्मवर्गणाओं का समूह आता है वह ज्ञानावरणादि के रूप में आठ प्रकार का होकर अवश्य ही जीव के साथ संबद्ध होता है उस समय उन मिथ्यात्वादि भावों का यह जीव कारण होता है।

ज्ञानिनो ज्ञाननिर्वृत्ताः सर्वेभावा भवंति हि।
सर्वेप्यज्ञाननिवृत्ता भवंत्यज्ञानिनस्तु ते।। (67) पृ.186

ज्ञानी के सभी भाव ज्ञान से उत्पन्न होते हैं और अज्ञानी के सभी भाव अज्ञान से उत्पन्न होते हैं।

अज्ञानमयभावानामज्ञानी व्याप्य भूमिकां।
द्रव्यकर्मनिमित्तानां भावानामेति हेतुतां।। (68)

अज्ञानी अज्ञानमय अपने भावों की भूमिका को व्याप्त कर आगामी द्रव्य कर्म के कारण अज्ञानादिक भाव की हेतुता को प्राप्त होता है।

शुद्ध एवं शुभोपयोग का फल

धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्धसंपयोगजुदो।
पावदि णिव्वाणसुहं सुहोवजुत्तो व सग्गसुहं।। (11)

The self that developed equanimity, if endowed with pure activities, attains the bliss of Nirvana and if endowed with auspicious activities, attains happiness.

आगे वीतराग चारित्र रूप शुद्धोपयोग तथा सराग चारित्र रूप शुभोपयोग परिणामों का संक्षेप से फल दिखाते हैं-

(परिणदप्पा) परिणम स्वरूप होता हुआ (अप्पा) यह आत्मा (जदि) यदि

(सुद्धसंपयोगजुदो) शुद्धोपयोग नाम के शुद्ध परिणाम में परिणत होता है। (णिव्वाणसुह) तब निर्वाण के सुख को (पावदि) प्राप्त करता है। (व) और यदि (सुहोवजुत्तो) शुभोपयोग में परिणमन करता है तो (सग्गसुह) स्वर्ग के सुख को पाता है।

यहाँ विस्तार यह है कि धर्म शब्द से अहिंसा लक्षण रूप मुनि धर्म श्रावक का धर्म, उत्तम क्षमादि दश लक्षण धर्म अथवा रत्नत्रय स्वरूप धर्म वा मोह क्षोभ से रहित आत्मा का परिणाम या शुद्ध वस्तु का स्वभाव ग्रहण किया जाता है। वही धर्म अन्य पर्याय से अर्थात् चारित्र भाव की अपेक्षा चारित्र कहा जाता है। यह सिद्धांत का वचन है कि 'चारित्तं खलु धम्मो' वही चारित्र अपहृत संयम तथा उपेक्षा संयम के भेद से वा सराग, वीतराग के भेद से वा शुभोपयोग, शुद्धोपयोग के भेद से दो प्रकार का है इनमें से शुद्ध संप्रयोग शब्द से कहने योग्य जो शुद्धोपयोग रूप वीतराग चारित्र है उससे निर्वाण प्राप्त होता है। जब विकल्प रहित समाधिमय शुद्धोपयोग की शक्ति नहीं होती है तब यह आत्मा शुभोपयोग रूप सराग भाव से परिणमन करता है तब अपूर्व और अनाकुलता लक्षणधारी निश्चय सुख से विपरीत आकुलता को उत्पन्न करने वाला स्वर्ग सुख पाता है। पीछे परम समाधि के योग्य सामग्री के होने पर मोक्ष को प्राप्त करता है ऐसा सूत्र का भाव है।

समीक्षा-जीव का स्वभाव परिणमनशील होने के कारण जीव हर समय परिणमन करता है परन्तु यह परिणमन पूर्णतः पर निरपेक्ष नहीं होता है। कर्म सहित जीव के मुख्यतः तीन प्रकार का परिणमन होता है (1) अशुभ (2) शुभ एवं (3) शुद्ध। चारित्र रूप परिणमन करता हुआ जीव जब शुद्ध रूप में परिणमन करता है तब समस्त पुण्य पाप रूपी बंधन से रहित होकर परिनिर्वाण/मोक्ष/मुक्त/परम स्वतंत्र अवस्था को प्राप्त करता है परन्तु इस अवस्था को तीन लोक में तीन काल में कोई भी जीव एक साथ प्राप्त नहीं कर सकता है। शुद्धावस्था को प्राप्त करने के लिए एक सुनिश्चित सुव्यवस्थित आध्यात्मिक प्रणाली है वह है-अशुभ को त्याग कर शुभ में आना और शुभ के माध्यम से शुद्धावस्था को प्राप्त करना क्योंकि यह जीव अनादिकाल से मिथ्यात्वादि कर्म के कारण अशुभ में ही रचा-पचा बंधा हुआ है इसीलिए पहले अशुभ को त्याग करना सहज सरल नहीं है। कुंदकुंद देव ने कहा भी है-

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंध कहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलभो विहत्तस्स।। (4) स.सा.

काम, बंध और भोग की कथा तो सब ही जीवों को सुनने में भी आयी है, परिचय में भी आयी है तथा अनुभव में भी आयी है किन्तु सबसे पृथक् होकर केवल एकाकी होने की बात सुलभ नहीं है।

शुद्ध भाव को प्राप्त करने की प्रणाली का वर्णन आचार्य गुणभद्र ने आत्मानुशासन में निम्न प्रकार से किया है।

अशुभाच्छुभमायातः शुद्धः स्यादयमागमात्।
रवेरप्राप्तसंध्यस्य तमसो न समुद्गमः।। (122)

यह आराधक भव्य जीव आगम ज्ञान के प्रभाव से अशुभ स्वरूप असंयम अवस्था से शुभरूप संयम अवस्था को प्राप्त हुआ समस्त कर्ममल से रहित होकर शुद्ध हो जाता है। ठीक है-सूर्य जब तक संध्या (प्रभातकाल) को नहीं प्राप्त होता हैं तब तक वह अंधकार को नष्ट नहीं करता है।

विधूततमसो रागस्तपः श्रुतनिबन्धनः।
संध्याराग इवार्कस्य जन्तोरभ्युदयाय सः।। (123)

अज्ञान रूप अंधकार को नष्ट कर देने वाले प्राणी के जो तप एवं शास्त्र विषयक अनुराग होता हैं वह सूर्य की प्रभातकालीन लालिमा के समान उसके अभ्युदय (अभिवृद्धि) के लिए होता है।

इस सिद्धांत को नष्ट करने के लिए कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ। जैसे-एक अस्वच्छ वस्त्र को स्वच्छ करने के लिए उस अस्वच्छ वस्त्र को गर्म पानी में डालकर उसमें साबुन-सोड़ा आदि लगाते है और उस वस्त्र को फीचते (धोते) हैं। जब इस प्रक्रिया से उसकी गंदगी निकल जाती है तब उस वस्त्र में उस समय फिर साबुन, सोड़ा आदि नहीं लगाते हैं और उसे निचोड़ कर सुखा देते हैं। पाठकगण को इस छोटे से उदाहरण को आध्यात्मिक दृष्टिकोण से विचार करना चाहिए। वस्त्र स्थानीय अशुद्ध आत्मा है सोड़ा आदि शुभोपयोग या पुण्य क्रिया है जैसे-वस्त्र बाह्य मैल से अशुभ हो वैसे आत्मा कर्ममल से अशुद्ध हो जाता है जैसे-सोड़े आदि से वस्त्र स्वच्छ हो जाता है वैसे ही शुभोपयोग से भी आत्मा शुद्ध हो जाता है। जब वस्त्र

से मल निकल जाता है तब सोड़ा आदि की आवश्यकता नहीं रहती वैसे आत्मा से जब कर्ममल निकल जाता है तब पुण्य या शुभ क्रियाओं की आवश्यकता नहीं रहती। मल जैसे बाह्य वस्तु है कर्ममल भी वैसे बाह्य वस्तु है जैसे-पापकर्म बाह्य वस्तु है वैसे पुण्य भी बाह्य वस्तु है। तथापि वस्त्र के मल को दूर करने के लिए सोड़ा आदि सहकारी है आत्मा के पापमल को दूर करने के लिए पुण्य कर्म भी सहकारी है। वस्त्र स्वच्छ होने के बाद जैसे वस्त्र को निचोड़कर सुखा दिया जाता है वैसे उसमें लगा हुआ पानी भी निकाल दिया जाता है वैसे ही जब आत्मा से पापमल निकल जाता है तो पुण्य भी छूट जाता है और एक उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ जैसे-शरीर में काँटा प्रवेश करने पर उस काँटे को निकालने के लिए एक सशक्त काँटे की आवश्यकता होती है। उस सशक्त काँटे के माध्यम से शरीर में प्रविष्ट काँटे को निकाल देते हैं। जब शरीर का काँटा निकल जाता है तब बाह्य काँटे की आवश्यकता नहीं रहती। उसी प्रकार आत्मा में जो अनादिकाल से संतति रूप से कर्मरूपी काँटा लगा है, उसको निकालने के लिए पुण्य रूपी काँटे की आवश्यकता पड़ती है और जब पाप रूपी काँटा निकल जाता है तब पुण्य रूपी काँटे की आवश्यकता नहीं रहती।

जैसे-जो फल फूल से लगता है उस फल के लिए फूल की आवश्यकता रहती है। जब फल बढ़ता जाता है तब फूल सूखता है और अंत में फूल की आवश्यकता नहीं रहती है। उसमें कुछ तो फूल सूखकर गिर जाते हैं और कुछ सूख जाते हैं। इसी प्रकार जब तक मोक्षरूपी फल, परिपक्व नहीं होता तब तक पुण्य रूपी फूल की आवश्यकता होती है परन्तु जब मोक्षरूपी फल परिपक्व हो जाता है तब पुण्य रूपी फूल की आवश्यकता नहीं रहती है। परन्तु जैसे अभी फल बहुत ही छोटा है और उस फल को वृद्धिंगत होने के लिए फूल की आवश्यकता रहती है उस समय यदि फूल को तोड़ दिया जाता है या फूल रोगाक्रांत हो जाता है, नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है तब फल सम्यक् रूप से वृद्धिंगत नहीं होता या सड़-गल जाता है। इसलिये जब तक निर्विकल्प समाधि/अभेद रत्नत्रय/श्रेणी आरोहण की अवस्था को जीव प्राप्त नहीं करता है एवं संकल्प-विकल्पात्मक क्रियाओं में/संसार की क्रियाओं में/राग-द्वेषात्मक क्रियाओं में/धन संचय, धन अर्जन, भोग आदि क्रियाओं में इच्छापूर्वक प्रवृत्ति होती है तब तक पुण्य क्रियाओं को इच्छापूर्वक, प्रतिज्ञापूर्वक, आगमानुकूल स्वयोग्य भूमिका

के अनुसार करना चाहिए। पुण्य क्रियाओं का प्रारंभ चतुर्थ गुणस्थान से होता है उसके पहले सम्यक् पुण्यानुबंधी पुण्य क्रिया होती ही नहीं है। वीरसेन स्वामी ने जयधवला में कहा भी है-

पावागम दाराइं अणाइरूवट्टियाइं जीवम्मि।

तथ्थ सुहासवदारं उग्घादेते कथं सदोसो।। (57) पृ. 97 भाग-1

जीवों में पापास्रव के द्वारा अनादिकाल से स्थित हैं, उनके रहते हुए जो जीव शुभास्रव के द्वार का उद्घाटन करता है-अर्थात् शुभास्रव के कारण मूल कामों को करता है वह सदोष कैसे हो सकता है?

चतुर्थ गुणस्थान में जघन्य रूप से पुण्य क्रिया रूप शुभोपयोग है उससे पाँचवें गुणस्थान में अधिक होता है उससे छट्ठे गुणस्थान में अधिक होता है उससे भी निरतिशय साँतवें गुणस्थान में अधिक शुभोपयोग होता है। उसके बाद सातिशय सप्तम गुणस्थान में अर्थात् श्रेणी आरोहण से शुद्धोपयोग जघन्य रूप से प्रारंभ होता है। वीरसेन स्वामी ने तो शुभोपयोग से कर्म क्षय भी माना है वे तो जब तक मोहनीय कर्म की सत्ता रहती है तब तक शुक्लध्यान को भी नहीं मानते हैं।

सुह सुद्ध परिणामेहि कम्मक्खयाभावे तक्खयाणुववत्तीदो।

शुभ और शुद्ध परिणामों से कर्मों का क्षय न माना जाय तो फिर कर्मों का क्षय हो ही नहीं सकता है।

प्रथम गुणस्थान से लेकर जीवन मुक्त सयोग केवली (13 गुणस्थान) तक विशिष्ट पुण्य कर्मों की अनुभाग शक्ति का घात नहीं हो सकता है।

पुण्य कर्मों का संपूर्ण नाश चौदहवें गुणस्थान के द्विचरम तथा चरम समय में होता है। वीरसेन आचार्य ने इस सिद्धांत का प्रतिपादन धवला-जयधवला में यत्र-तत्र अनेक स्थानों में वर्णन किया है उनमें से एक प्रकरण निम्न में उद्धरण कर रहे हैं-

(पसत्थाणं कम्माणं विसोहीए अणुभागघादो णत्थि त्ति. अप्पसत्थाणं चेव कम्माणमिह घादिज्जमाणाणमणुभागविण्णासविसेसो उवजुज्जंतओ।)

विशुद्धि के कारण प्रशस्त कर्मों का अनुभाग घात नहीं होता है इसीलिए घात होने वाले अप्रशस्त कर्मों के ही अनुभाग की रचना उपयोगी है।

विसोहीए सुहाणमणुभागवुड्ढि मोत्तूण पयारंतरासंभवादो। (ज.ध.पु.14 पृ.153)

विशुद्धि के बल से शुभ प्रकृतियों की अनुभाग वृद्धि को छोड़कर अन्य प्रकार असंभव है।

पुण्य और पाप का तर्कबद्ध, सैद्धांतिक प्रस्तुतिकरण आचार्य अकलंकदेव ने निम्न प्रकार किया है।

(पुनात्यात्मानं पूयतेऽनेनेति वा पुण्यम्) (4)

कर्मणः स्वातन्त्र्यविवक्षाया पुनात्यात्मानं प्रीणयतीति पुण्यम्। पारतन्त्र्यविवक्षायां कारणेत्वोपपत्तेः पूयतेऽनेनेति वा पुण्यम्, तत्सद्वेद्याद्युत्तरत्र वक्ष्यते।

(तत्प्रतिद्वन्द्विरूपं पापम्)। (5) तस्य पुण्यस्य प्रतिद्वन्द्विरूपं पापमिति विज्ञायते। पाति रक्षत्यात्मानम् अस्माच्छुभपरिणामादिति पापाभिधानम्। तद् सद्वेद्याद्युतत्तरत्र वक्ष्यते।

जो आत्मा को पवित्र करे या जिससे आत्मा पवित्र किया जाता है, वह पुण्य कहलाता है अथवा जिसके द्वारा आत्मा सुख-साता का अनुभव करे, वह साता वेदनीय आदि कर्म पुण्य है। स्वतंत्र विवक्षा में जो आत्मा को पवित्र करता है, प्रसन्न करता है वह पुण्य है एवं कर्तृवाच्य से निष्पन्न पुण्य शब्द है। पारतन्त्र्य विवक्षा में करण साधन से पुण्य शब्द निष्पन्न होता है, जैसे-जिसके द्वारा आत्मा पवित्र एवं प्रसन्न किया जाता है, वह पुण्य है।

पुण्य का प्रतिद्वंद्वी (विपरीत) पाप है। जो आत्मा की शुभ से रक्षा करे अर्थात् आत्मा में शुभ परिणाम न होने दे, वह पाप कहलाता है, वह असातावेदनीय आदि पापकर्म है जिसका वर्णन आगे करेंगे।

उभयमपि पारतन्त्र्यहेतुत्वादविशिष्टमितिः चेत् नः इष्टानिष्टानिमित्त भेदत्तद्भेसिद्धेः।

पुण्य पाप दोनों ही आत्मा की परतंत्रता में कारण हैं, इसीलिए इन दोनों में कोई भेद नहीं, ऐसा कहना उपयुक्त नहीं है, क्योंकि इष्टा-निष्ट फल के निमित्त से इन दोनों में भेद है।

प्रश्न–जैसे सोने की बेड़ी और लोहे की बेड़ी दोनों ही का अविशेषता से तुल्य (समान) फल है प्राणी को परतंत्र करना, वैसे-ही पुण्य-पाप दोनों ही आत्मा को परतंत्र करने में निमित्त कारण हैं। इन पुण्य और पाप में कोई भेद नहीं है, यह पुण्य (शुभ) है, यह अशुभ (पाप) है, यह तो केवल संकल्प मात्र भेद है? उत्तर-पुण्य पाप

को सर्वथा एक रूप कहना उपयुक्त नहीं है, क्योंकि सोने एवं लोहे की बेड़ी की तरह दोनों ही आत्मा की परतंत्रता में कारण है तथापि इष्टफल और अनिष्टफल के निमित्त से पुण्य-पाप में भेद है। जो इष्ट गति, जाति, शरीर, इन्द्रिय विषय आदि का निर्वर्तक (हेतु) है, वह पुण्य है तथा जो अनिष्ट गति, जाति, शरीर, इन्द्रिय के विषय आदि का कारण है वह पाप है। इस प्रकार पुण्य कर्म और पाप कर्म में भेद है। इनमें शुभ योग पुण्यास्त्रव का कारण है और अशुभयोग पापास्त्रव का कारण है।

(तत्त्वार्थवार्तिकम्-भाग 2 पृ.154)

अतएव पुण्यानुबंधी पुण्य की जीवों के ऊपर महान् उपकारिता को स्वीकार करते हुए जैनाचार्यों ने पुण्य की महानता के वर्णन के साथ-साथ पुण्य करने के लिए प्रेरणा भी दी है। यथा-

अहो पुण्यं विना जन्तोनोद्यमः सिद्धिदो भवेत्।
तस्मात्पुण्यं कर्तव्यं धीधनेः सदा।।

आचार्य की बात है कि पुण्य के बिना जीवों के पुरुषार्थ की सिद्धि नहीं होती है इसीलिए जिनेन्द्र द्वारा प्रतिपादित पुण्य का संपादन सदा ज्ञानियों को करना चाहिए।

केवल लौकिक कार्यसिद्धि के लिए पुण्य की आवश्यकता नहीं होती है किन्तु मोक्षसिद्धि के लिए भी परमावश्यकता है।

मोक्षस्यापि परम पुण्यातिशयचारित्र विशेषात्मक पौरूषाभ्यामेवसम्भवात्।

(अष्टसहस्त्री पृ.257 विद्यानन्दि आचार्य)

मोक्ष की उपलब्धि भी परम पुण्य अतिशय से एवं रत्नत्रयात्मक विशेष चारित्र रूप पुरुषार्थ से ही संभव होती है।

इसीलिए एक अनुभवी कवि ने अशुभ-शुभ एवं शुद्ध भाव का वर्णन अति सूक्ष्म एवं आगमोक्त प्रकार से किया है-

अशुभ भाव को त्यागकर सदा धरो शुभ भाव।
शुद्ध भाव आदर्श हो यह आगम का भाव।।

अनेकांतात्मक सर्वज्ञ प्रतिपादित जैन धर्म में कुछ एकांतवादी हठग्राही लोग जैन धर्म का रहस्य बिना समझे तथा भूमिका अनुसार अशुभ, शुभ तथा पाप-पुण्य कर्मातीत निर्मल निरंजन अवस्था का पूर्णतः परिज्ञान किये बिना मनमानी यद्वा-तद्वा

चर्चा कर रहे हैं। इससे स्व-पर, इहलोक-परलोक को अंधकारमय कर रहे हैं। उनकी नीति निम्न प्रकार है-

वीतराग की चर्चा, राग की अर्चा, पुण्य की निन्दा पाप का धंधा।
मुमुक्षु की गोष्ठी बुभुक्षु की दृष्टि, वातानुकूल में वास मतानुकूल शास्त्र।।

आचार्य देवसेन स्वामी ने भी भावसंग्रह में पुण्य-पाप का वर्णन आगमोक्त एवं समीक्षात्मक ढंग से किया है। उनका मत एवं पूर्वाचार्यों का मत है कि पुण्य सम्यग्दृष्टि का ही होता है और वह यथार्थ से भाव स्वरूप होता है जिसे भाव पुण्य कहते हैं। भाव पुण्य सहित जो कर्मबंध होता है उसे द्रव्य पुण्य कहते हैं। वह भाव पुण्य जिस जीव में होता है उसे पुण्यशाली या धर्मात्मा कहते हैं इसी प्रकार पाप और पापात्मा है। नेमिचंद सिद्धांत चक्रवर्ती ने द्रव्यसंग्रह में कहा है-

'**सुहअसुहभावजुत्ता पुण्णं पावं हवंति खलु जीवा**'-1

शुभ और अशुभ परिणामों से युक्त जीव पुण्य और पाप रूप होते हैं। आत्म रुचि तत्त्वार्थ श्रद्धानपूर्वक जो देव-शास्त्र-गुरु-धर्म-अणुव्रत-महाव्रत में रुचि, दान, जीव-दया, व्रत पालन, पापों का त्याग, पुण्य क्रियाओं का अनुष्ठान हिंसा/मिथ्या भाषण-चोरी-कुशील परिग्रहों का त्याग, इन्द्रियों का दमन, मन को संयमित करना कुटिलाचार, मायाचार, वक्रता, धूर्तता आदि का त्याग करना सहज-सरल मनोवृत्ति होना यथार्थ से भाव-पुण्य है इससे युक्त जीव ही यथार्थ से पुण्यशाली है। केवल बाह्य धन-वैभव सहित व्यक्ति को पुण्यात्मा नहीं कहा जा सकता है क्योंकि पापानुबंधी पुण्य के उदय से भी धन वैभव प्राप्त हो सकता है परन्तु उपर्युक्त भाव पुण्य के अभाव से मिथ्यादृष्टि जीव को न पुण्यात्मा कह सकते है और उसका पुण्य यथार्थ पुण्य नहीं है। तुलसीदास ने भी कहा हैं-

संत समागम प्रभु भजन तुलसी दुर्लभ दोय।
सुत दारा और धन वैभव पापी के भी होय।।

ऐसे पापानुबंधी पुण्य की निंदा करते हुए योगेन्द्र देव ने परमात्म प्रकाश में भी कहा है।

पुण्णेण होइ विहवो विहवेण मओ मएण मई-मोहो।
मइ मोहेण य पावं पुण्णं अम्ह मा होउ।। (60) पृ.181

पुण्य से घर में धन होता है और धन से अभिमान, मान से बुद्धिभ्रम होती है, बुद्धि के भ्रम होने से (अविवेक से) पाप होता है, इसलिए ऐसा पुण्य हमारे न होवें।

यह पुण्य मिथ्यादृष्टि अपनी कुतपस्या निदान सहित पुण्य क्रियाओं से संपादन करता है उसके फल से यद् किंचित् वैभव प्राप्त कर भोगासक्त हो जाता है और उससे अहंकारी भी हो जाता है। वह पुण्य से पुनः पापबंध करके संसार में भ्रमण करता है परन्तु सम्यग्दृष्टि पुण्य के फल से वैभव को प्राप्त करके और भी धार्मिक अनुष्ठान करता है और अंत में उस पुण्य को त्यागकर मुनि दीक्षा लेकर मोक्ष को प्राप्त करता है। ऐसा ही वर्णन देवसेन आचार्य ने भावसंग्रह में किया है-

पुण्यं पूर्वाचार्या द्विविधं कथयन्ति सूत्रोक्त्या।
मिथ्यात्व प्रयुक्तेन कृतं विपरीतं सम्यक्त्वयुक्तेन।। (399) पृ.183

पूर्वाचार्यों ने अपने सिद्धांत सूत्रों के अनुसार उस पुण्य के दो भेद बतलाये हैं। एक तो मिथ्यादृष्टि पुरुष के द्वारा किया हुआ पुण्य और दूसरा इसके विपरीत सम्यग्दृष्टि के द्वारा किया हुआ पुण्य।

मिच्छादिट्ठीपुण्णं फलइ कुदेवेसु कुणरतिरिएसु।
कुच्छिय भोग धरासु य कुच्छिय पत्तस्स दाणेण।। (400)

मिथ्यादृष्टि पुरुष प्रायः कुत्सित पात्रों को दान देता है इसलिये वह पुरुष उस कुत्सित दान के फल से कुदेवों में उत्पन्न होता है, कुमनुष्यों में उत्पन्न होता है, नीचे तिर्यंचों में उत्पन्न होता है और कुभोग भूमियों में उत्पन्न होता है।

सम्मादिट्ठी पुण्णं ण होइ संसार कारणं णियमा।
मोक्खस्स होइ हेउं जइ वि णियाणं ण सो कुणइ।। (404)

सम्यग्दृष्टि के द्वारा किया हुआ पुण्य संसार का कारण कभी नहीं होता यह नियम है। यदि सम्यग्दृष्टि पुरुष के द्वारा किये हुए पुण्य में निदान न किया जाय तो वह पुण्य नियम से मोक्ष का ही कारण होता है कोई भी पुण्य कार्य कर उससे आगामी काल के भोगों की इच्छा करना या और कुछ चाहना निदान है, निदान नरक का कारण है। इसीलिए उत्तम पुरुषों को निदान कभी नहीं करना चाहिए।

अकइयणियाणसम्मो पुण्णं काऊण णाणचरणट्ठो।
उप्पज्जई दिवलोए सुहपरिणामो सुलेसो वि।। (405)

जिस सम्यग्दृष्टि पुरुष के शुभ परिणाम हैं, शुभ लेश्याएँ हैं तथा जो सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को धारण करता है, ऐसा सम्यग्दृष्टि पुरुष यदि निदान नहीं करता है तो वह पुरुष मरकर स्वर्ग लोक में ही उत्पन्न होता है।

अशुभोपयोग का फल

असुहोदयेण आदा कुणरो तिरियो भवीय णेरइयो।

दुक्खसहस्सेहिं सदा अभिंधुद्दो भमदि अच्चंतं।। (12)

By the rise of inauspicious activities, the soul wanders for long as a low graded human being, a sub-human being and a hellish one being subject for ever to thousands of miseries.

आगे कहते हैं कि जिस किसी आत्मा में वीतराग या सरागचारित्र नहीं है उसके भीतर अत्यंत त्यागने योग्य अशुभोपयोग का फल कटुक होता है। (असुहोदयेण) अशुभ उपयोग के प्रगट होने से जो पापकर्म बंधता है उसके उदय से (आदा) आत्मा (कुणरो) खोटा दीन दरिन्द्री मनुष्य (तिरियो) तिर्यंच तथा (णेरइयो) नारकी (भवीय) होकर (अच्चंतं) बहुत अधिक (भमइ) संसार में भ्रमण करता है।

प्रयोजन यह है कि अशुभ उपयोग, विकार रहित शुद्ध आत्म तत्त्व की रुचि रूप निश्चय सम्यक्त्व से तथा उस ही शुद्ध आत्मा में क्षोभ रहित चित्त का वर्तना रूप निश्चय चारित्र से विलक्षण या विपरीत हैं। विपरीत अभिप्राय से पैदा होता है तथा देखे, सुने, अनुभव किए हुए पंचेन्द्रियों के विषयों की इच्छा-मय तीव्र संक्लेश रूप हैं, ऐसे अशुभ उपयोग से जो पापकर्म बाँधे जाते हैं, उनके उदय होने से यह आत्मा स्वभाव से शुद्ध आत्मा के आनंदमयी पारमार्थिक सुख से विरुद्ध, दुःख से दुःखी होता हुआ व अपने स्वभाव की भावना से गिरा हुआ संसार में खूब ही भ्रमण करता है ऐसा तात्पर्य है।

समीक्षा-अनादिकाल से जीव पापकर्म के उदय से स्व-स्वरूप से च्युत होकर मिथ्यात्व, असंयम, अविरति, प्रमाद, विषय कषाय रूपी अशुभोपयोग में परिणमन करता है इसलिए यह विषय अर्थात् अशुभोपयोग जीव के लिए सुलभ हैं। कुंदकुंद देव स्वामी ने समयसार में कहा हैं '**सुदपरिचिदाणुभूदासव्वसवि कामभोगबंध कहा, एयत्तस्सुवलंभो**' अर्थात् काम भोग बंध कथा को यह जीव अनादिकाल से

अनंत बार सुना, परिचय लिया, अनुभव किया, रचापचा इसलिए यह सुलभ हैं। इसलिए संसारी जीव की प्रवृत्ति मोह, राग-द्वेषात्मक होती है। जैसे-पानी की स्वाभाविक गति निम्नगामी होती हैं। वैसे ही संसारी जीव की प्रवृत्ति अशुभोपयोग में होती है। परन्तु पानी को ऊर्ध्वगामी बनाने के लिए विशेष बाह्य शक्ति की आवश्यकता पड़ती है इसी प्रकार जीव को भी ऊर्ध्वगामी बनने के लिए विशेष करके शुभोपयोग एवं शुद्धोपयोग रूपी शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। जो परम शुद्ध भाव को प्राप्त किये बिना शुभ भाव को त्याग कर देता है वह निश्चित रूप से अशुभ भाव में पतित होगा ही क्योंकि जीव के तीन उपयोग होते हैं-1. अशुभ, 2. शुभ, 3. शुद्ध। यह जीव किसी न किसी उपयोग में अवश्य रहेगा ही। इसलिए शुद्धोपयोग की प्राप्ति के बिना यदि शुभोपयोग में नहीं रहेगा तो निश्चित रूप में अशुभोपयोग में पतित होगा ही और उस अशुभोपयोग के कारण पापबंध करके विचित्र दुःखों को भोगेगा। आत्मानुशासन में गुणभद्र स्वामी ने कहा भी है-

विहाय व्याप्तमालोक पुरस्कृत्य पुनस्तमः।
रविवद्रागमागच्छन् पातालतलमृच्छति।। (124)

जिस प्रकार सूर्य के फैले हुए प्रकाश को छोड़कर एवं अंधकार को आगे करके जब राग (लालिमा) को प्राप्त होता है तब वह पाताल को जाता है, अस्त हो जाता है, उसी प्रकार जो प्राणी वस्तु स्वरूप को प्रकाशित करने वाले ज्ञानरूप प्रकाश को छोड़कर अज्ञान को स्वीकार करता हुआ राग (विषयवांछा) को प्राप्त होता है वह पाताल अर्थात् नरकादि दुर्गति को प्राप्त होता है।

घादीणीचमसादं णिरयाऊ णिरयतिरिमदुग जादि।
संठाणसंहदीणं चदुपणपणगं च वण्णचओ।। (43)
उवघादमसग्गमणं थावदसयं च अप्पसत्थाहु।
बंधुदयं पडि भेदे अडणउदि समं दुचदुरसीदिदरे।। (44) गो.सार. कर्म

घातिया कर्म की 47 प्रकृति तथा नीचगोत्र, असातावेदनीय, नरकायु, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगति-तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रियादि जाति-4, संस्थान-5, संहनन-5, (अशुभ) वर्णचतुष्क, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावरादि-10 अप्रशस्त (पाप) प्रवृत्तियाँ हैं। भेदविवक्षा से बंधरूप 98 प्रकृतियाँ एवं उदय रूप

100 प्रकृतियाँ है। अभेद विवक्षा से वर्णादि की 16 प्रकृति घटाने पर बंधरूप 82 और उदय रूप 84 प्रकृतियाँ हैं।

पाप का कार्य

पापं शत्रुं परं विद्धि महादुःखानलेन्धनम्।
श्वभ्रादि दुर्गतेर्बीजंरोगक्लेशादि सागरम्।। (7)
किमत्र बहुनोक्तेन यत्किञ्चिद्धिविरूपकम्।
दुःखदारिद्रिय रोगादि सर्वं तत्पापजं भवेत्।। (8) सर्वो. श्लो.

महा दुःख रूपी अग्नि को बढ़ाने के लिए ईंधन, नरकादि दुर्गतियों का कारण तथा रोग-क्लेश आदि के सागर स्वरूप पाप को परम शत्रु जानो अथवा इस विषय में अधिक कहने से क्या लाभ है। जगत् में जो कुछ भी विरूप दुःख दारिद्रय तथा रोगादिक हैं वे सब पाप से उत्पन्न हुए हैं।

पाप त्याग के लिए प्रेरणा-

ऐसा जानकर हे बुद्धिमान्! यदि स्वर्ग और मोक्ष संबंधी सुख में तेरी उत्कट इच्छा है तो विवेकपूर्वक पाप का परित्याग कर। पाप के कारण और उसके फल को यदि कोई कह सकता है तो भगवान् महावीर ही कह सकते हैं, अन्य कोई कहने के लिए समर्थ नहीं है।

पापाद् दुःखं धर्मात्सुखमिति सर्वजनसुप्रसिद्धमिदम्।
तस्माद्विहाय पापं चरतु सुखार्थी सदा धर्मम्।। (8) आत्मानुशासन

पाप से दुःख और धर्म से सुख होता है, यह बात सब जनों में भली प्रकार प्रसिद्ध है-इसे सब ही जानते हैं। इसलिये जो भव्य प्राणी सुख की अभिलाषा करता है उसे पाप को छोड़कर निंतर धर्म का आचरण करना चाहिए।

यदि पापनिरोधोऽन्य-सम्पदा किं प्रयोजनं।
अथ पापास्त्रवोऽस्त्यन्य,-सम्पदा किं प्रयोजनं।। (27) रत्नकरण्डश्रा.

यदि पाप का निरोध है तो दूसरी संपत्ति से क्या प्रयोजन है? और यदि पाप का आस्त्रव है तो अन्य संपत्ति से क्या प्रयोजन है?

शुद्धोपयोग का फल अक्षय अंनत सुख

अइसयमादसमुत्थं विसयातीदं अणोवममणंतं।
अव्वुच्छिण्णं च सुहं सुद्धवओगप्पसिद्धाणं।। (13)

The happiness of those who are famous for their pure consciousness of serenity is transcendental, born from the self, supersensuous, incomparable, infinite and indestructible.

आगे आचार्य शुभोपयोग और अशुभोपयोग दोनों को निश्चयनय से त्यागने योग्य जान करके शुद्धोपयोग के अधिकार को प्रारंभ करते हुए तथा शुद्ध आत्मा की भावना को स्वीकार करते हुए अपने स्वभाव में रहने के इच्छुक जीव का उत्साह बढ़ाने के लिए शुद्धोपयोग का फल प्रकाश करते हैं अथवा दूसरी पातनिका या सूचना यह है कि यद्यपि अग्र में आचार्य शुद्धोपयोग का फल ज्ञान और सुख संक्षेप या विस्तार से कहेंगे तथापि यहाँ भी इस पीठिका में सूचित करते हैं अथवा तीसरी पातनिका यह है कि पहले शुद्धोपयोग का फल निर्वाण बताये थे अब यहाँ निर्वाण का फल अनंत सुख होता है ऐसा कहते हैं। इस तरह तीन पातनिकाओं के भाव को मन में धरकर आचार्य आगे का सूत्र कहते है।

(शुद्धवओगप्प सिद्धाणं) शुद्धोपयोग में प्रसिद्धों को अर्थात् वीतराग परम सामायिक शब्द से कहने योग्य शुद्धोपयोग के द्वारा जो अरहंत और सिद्ध हो गए हैं उन परमात्माओं को (अइसयं) अतिशय रूप अर्थात् अनादिकाल के संसार में चले आये इन्द्रियों के सुखों से भी अपूर्व अद्भुत परम आह्लाद रूप होने से आश्चर्यकारी, (आदसमुत्थ) आत्मा से उत्पन्न अर्थात् राग-द्वेषादि विकल्प रहित अपने शुद्धात्मा के अनुभव से पैदा होने वाला, (विसयातीद) विषयों से शून्य अर्थात् इन्द्रिय विषय रहित परमात्म तत्त्व के विरोधी पाँच इन्द्रियों से रहित (अणोवमं) उपमा-रहित अर्थात् दृष्टांत रहित परमानंदमय एक लक्षण को रखने वाला, (अणंतं) अनंत अर्थात् अनंत भविष्यत् काल में विनाश रहित अथवा अप्रमाण (च) तथा (अव्वुछिण्णं) विच्छिन्न रहित अर्थात् असाता का उदय न होने से निरंतर रहने वाला (सुहं) आनंद रहता है। यही सुख उपादेय है, इसी की निरंतर भावना करनी योग्य है।

समीक्षा–अशुभोपयोग से पाप का बंध तो शुभोपयोग से पुण्य का बंध होता है

परन्तु अध्यात्म दृष्टि से दोनों बंध स्वरूप है और बंध संसार का कारण है। इसलिए शुभ, अशुभ भाव से रहित आत्मा का जो स्व-स्वरूप है उसी रूप जब जीव परिणमन करता है तब संपूर्ण शुभ, अशुभ बंधन को तोड़कर जीव परम स्वातंत्र्य मोक्ष सुक्ष को प्राप्त करता है। आत्मानुशासन में गुणभद्र स्वामी ने कहा भी हैं-

तत्राप्यद्यं परित्याज्यं शेषौ न स्तः स्वतः स्वयम्।
शुभं च शुद्धे त्यक्त्वान्ते प्राप्नोति परमं परम्।। (240)

पूर्व लोक में जिन तीन को शुभ, पुण्य और सुख को हितकारक बतलाया है उनमें भी प्रथम का (शुभ का) परित्याग करना चाहिए। ऐसा करने से शेष रहे पुण्य और सुख से दोनों स्वयं ही नहीं रहेंगे, इस प्रकार शुभ को छोड़कर और शुद्ध स्वभाव में स्थित होकर जीव अंत में उत्कृष्ट पद (मोक्ष) को प्राप्त हो जाता है।

यस्य पुण्यं च पापं च निष्फलं गलति स्वयम्।
स योगी तस्य निर्वाणं न तस्य पुनरास्त्रव।। (246)

जिस वीतराग के पुण्य और पाप दोनों फलदान के बिना स्वयं अविपाक निर्जरा स्वरूप से निर्जीण होते हैं वह योगी कहा जाता है और उसके कर्मों का मोक्ष होता हैं, किन्तु आस्रव नहीं होता है।

धम्महँ अत्थहँ कामहँ वि एयहँ सयलहँ मोक्खु।
उत्तमु पभणहिं णाणि जिय अण्णें जेण ण सोक्खु।।

परमात्म प्रकाश अ. 2 (3) पू. 116

हे जीव! धर्म, अर्थ और काम, मोक्ष इन सब पुरुषार्थों में से मोक्ष को उत्तम, ज्ञानी पुरुष कहते है, क्योंकि अन्य धर्म, अर्थ कामादि पदार्थों में परम सुख नहीं है।

जब आप भीतर की भगवत्ता को जान लेते हैं तो आपका प्रेम भक्ति बन जाता है और कण-कण में व्याप्त ईश्वर को देख पाता है।

जीवन को खुशनुमा बनाने के लिए बनायें प्रेम का इंद्रधनुष

-ओशो शैलेन्द्र

यदि हम इंद्रधनुष के रंगों को अलग-अलग देखे तो वे एक-दूसरे के विपरीत मालूम पड़ेंगे लेकिन अगर हम उसे समग्र रूप से देखे तो पता चलेगा

कि सातों रंग एक-दूसरे में परिवर्तनशील हैं। जैसे, नीले और पीले के बीच हरा रंग है। दरअसल, जहाँ नीले और पीले रंग एक-दूसरे को अतिच्छादित करते हैं, वहीं हरा रंग बन जाता है। इंद्रधनुष के पार के रंगों में भी एक तरह की तारतम्यता है और वे सब एक-दूसरे में परिवर्तनशील हैं। ऐसे ही प्रेम का नाता भी एक इंद्रधनुष जैसा है। जैसे, अलग-अलग दिखाई देने वाले सारे रंग एक ही श्वेत रंग से निकले हैं और सूरज की सफेद किरण इंद्रधनुष में सात रंगों में विभक्त होकर दिखती है, ठीक वैसे ही हमारी जीवन ऊर्जा भी सात रंगों में अभिव्यक्त होती है। हम इन्हें प्रेमरूपी इंद्रधनुष के सात रंग कह सकते हैं। अपने जीवन में खुशियाँ बिखेरने और खुशनुमा बनाने के लिए प्रेमरूपी इंद्रधनुष का निर्माण किया जा सकता है।

अहमचर्य, प्रेमचर्य और ब्रह्मचर्य-ब्रह्म को जानकर की गई चर्या है-ब्रह्मचर्य। अहम के तल पर जो जी रहा है उसके आचरण को कहना चाहिए अहम्चर्य और मध्य में जो है उसका नाम होना चाहिए-प्रेमचर्य। इस अस्तित्व से इसी तीन तरह के हमारे संबंध हो सकते हैं। अहम्चर्य, प्रेमचर्य और ब्रह्मचर्य, एक-दूसरे के विपरीत नहीं है। ये आपस में सोपान की तरह परस्पर जुड़े हुए हैं। जीवन में खुशियाँ भरने के लिए हमें निचले पायदान से यात्रा करनी होगी।

प्रेम और घृणा के बीच का अंतर जानें-अगर आप प्रेम के रूपों को तीन खंडों में अलग-अलग करके देखना चाहे तो कह सकते हैं, अहम, प्रेम, ब्रह्म या काम, प्रेम, राम। प्रेम बीच में है। अगर वह नीचे की तरफ गिरे तो मोह बन जाता है, कामवासना बन जाता है दोस्ती बन जाता है। यदि वह ऊपर उठे तो ध्यान, श्रद्धा या पराभक्ति बन जाता है और अंततः अद्वैत में ले जाता है। प्रेम के इस पूरे इंद्रधनुष को देखे तो यह समझना आसान होगा कि प्रेम और घृणा का आपस में नाता हैं? जितने नीचे के तल पर आयेंगे, प्रेम की मात्रा उतनी कम होती जायेंगी और घृणा की मात्रा उतनी ही बढ़ती जायेंगी। जितने ऊपर जायेंगे, घृणा की मात्रा कम और प्रेम की मात्रा ज्यादा होती जायेंगी। प्रेम का शुद्धिकरण होता जायेगा।

जिसे हम सामान्य भाषा में प्रेम कहते हैं, वह दरअसल प्रेम की चौथी सीढ़ी है। इसमें प्रेम और घृणा दोनों आपस में घुले-मिले हुए हैं। अब यह

आप पर निर्भर करता है कि आप स्वयं को किस ओर ले जाते हैं।

चेतना, श्रद्धा और समाधि हैं प्रेम के रूप-जब हमारी चेतना का प्रेम स्वकेंद्रित होता है तो उसे हम सब ध्यान के नाम से जानते हैं लेकिन जब वही चेतना परकेंद्रित होती है तो वह श्रद्धा का रूप ले लेती है। इसलिए, गुरु के प्रति प्रेम श्रद्धा कहलाती है। जब हम ब्रह्म से, परमात्मा से परिचित होते हैं तब समाधि घटित होती है। वह प्रेम का अतिशुद्ध रूप है। इस छठे स्तर के प्रेम को आप परमात्मा के प्रति अनुराग या पराभक्ति भी कह सकते हैं। अब वहाँ वस्तुएँ न रहीं, देह न रही। विचारों और भावनाओं के भी पार पहुँच गए। सातवें प्रकार के प्रेम को अद्वैत की अनुभूति कहा गया है। यदि आप स्वयं को चैतन्यद्व साक्षी आत्मा समझते हो तब आपका दूसरे से जो प्रेम होगा वह चेतना के तल पर होगा। दूसरे से आप वही देख सकेंगे जो स्वयं के भीतर देख पाते हैं। यदि आप स्वयं देह केंद्रित हो तो दूसरे के भीतर की चेतना को जान पाना संभव नहीं। आप स्वयं के भीतर अपनी चेतना को महसूस करेंगे, तभी दूसरे के भीतर भी चेतना को महसूस कर पायेंगे। तब आपका प्रेम ऊर्ध्वगामी होता चला जायेगा।

हृदय से हृदय को प्रेम ही है सच्ची प्रीत-वस्तुओं, मकान, स्थानों आदि के प्रति जो हमारी पकड़ है, वह भी प्रेम का ही एक स्थूल रूप है। यही मोह है। यह मेरा सामान, मेरी कार, मेरा फर्नीचर, मेरे गहने-यह जो मेरे की पकड़ है, यह सबसे निम्न कोटि का प्रेम है। राजनीति पद व शक्ति के प्रति प्रेम है, लोभ-धन-संपत्ति के प्रति प्रेम है। दैहिक प्रेम दूसरे तल का है और वस्तु, स्थान आदि से उच्चतर स्तर का है। यह प्रेम कामवासना का रूप ले लेता है। तीसरा प्रेम है विचारों का मन का प्रेम। यही मैत्री भाव है। यहाँ शरीर या वस्तु का सवाल नहीं रहा। दोस्ती मन और विचार के तल का प्रेम है। हृदय का प्रेम यानी प्रीति चौथे तल पर है। इसी को भावनात्मक प्रेम कहा जाता है। इसकी स्थिति मध्य में है क्योंकि तीन रंग इसके नीचे हैं, तीन इसके ऊपर। हृदय के तल पर प्रीति का भाव अपने बराबर वालों के साथ होता है जैसे भाई-भाई के बीच, पति-पत्नी के बीच पड़ोसियों के बीच। इसके दो और रूप है। अपने से छोटों के प्रति जो वात्सल्य भाव हैं, स्नेह है और अपने से बड़ों के प्रति जो आदर का भाव है, वह भी प्रीति के ही रूप हैं।

वाग्वर में आध्यात्मिक क्रांति

(बिना बोली-निराडम्बर पिच्छी परिवर्तन व सम्मान समारोह संपन्न)

वाग्वर अञ्चल के सांस्कृतिक ग्राम चितरी में चातुर्मास व प्रवासरत आध्यात्मिक संत प्रवर वैज्ञानिक श्रमणाचार्यश्री कनकनंदी गुरुदेव ससंघ निश्रा में बिना बोली निराडम्बर पिच्छी परिवर्तन व सम्मान समारोह अत्यंत आध्यात्मिक बोधपूर्ण उपलब्धि सह-सोल्लास संपन्न हुआ। इस अवसर पर आचार्यश्री सृजित चार ग्रंथों का विमोचन हुआ। 1. आध्यात्मिक शक्ति गीताञ्जली धारा...67, ग्रंथांक-280, 2. आत्म-साधना गीताञ्जली धारा...68, ग्रंथांक-281, 3. श्रेष्ठता गीताञ्जली धारा...69, ग्रंथांक-282, 4. आध्यात्मिक दशधा धर्म गीताञ्जली धारा...70, ग्रंथांक-283.

इस सुअवसर में बागड़-मेवाड़ व अन्य प्रदेशों से पधारे श्रद्धालु-भक्त व शिष्यों द्वारा स्व-स्वभाव-अनुभव-विचार व अनुरोध प्रस्तुति से कार्यक्रम की महत्ता व प्रभावकता से जन-गण-मन अत्यंत आह्लादित हुए। श्रीमद् राजचन्द्र आध्यात्मिक साधना केन्द्र, कोबा (गुजरात) से पधारे साधक वृंदों ने भी अपने विनय विचार आदि अभिव्यक्त किये व दूसरी बार आचार्यश्री साहित्य प्रकाशनार्थे ज्ञानदान दिये। ब्र. सुरेशजी कोबा ने आचार्यश्री को आध्यात्मिक ज्ञान व अनुभव की विश्व-विभूति बताया। ऐसी ज्ञान-गंगा को लाने वाले भगीरथ कलिकाल श्रेयांस शाह भूपेश जैन की भूरि-भूरि प्रशंसा की। गुरुदेव की वीतरागता व निस्पृहता से सभी साधकगण अभिभूत हुए। कलिकाल श्रेयांस नितिन जैन ने भी सीपुर परिवार की ओर से चातुर्मासकर्त्ता शाह भूपेश जैन परिवार को 'भक्त शिरोमणि' की उपाधि से अलंकृत कर भावभीना बहुमान किया। बनकोड़ा निवासी भूतपूर्व राजा महिपालसिंह जी ने गुरुदेव के प्रति भावभीनी श्रद्धा-भक्ति अर्पित करते हुए कहा कि कनकनंदी गुरु भगवान् हैं। शाह भूपेश जैन ने अपने कृतज्ञ उद्‌गार प्रकट करते हुए कहा कि यह सभा एक महान् संत की सभा है जिनका श्रीसंघ स्नेह, समन्वय, उदारता, वात्सल्य व संगठन आदि गुणों से विशिष्ट है। यह चातुर्मास स्वर्णिम ऐतिहासिक-आध्यात्मिक, अद्वितीय हुआ है। नंदौड़ से पधारे बालकद्वय शाह अक्षत व चयन द्वारा आगामी चातुर्मास (2018) कराने हेतु निवेदन किया गयाँ सभा के अंत में प्रभावक आध्यात्मिक प्रबोधन देते हुए आचार्यश्री ने कहा कि संपूर्ण धर्म का सार है-''तत्त्वमेसि श्वेतकेतु'' 'आत्मन् वेद्धि' अर्थात् स्वयं को पहिचानना। अब तक आपकी आँखें बंद थी किन्तु आत्मा (मैं) के ज्ञान बोध से व आप लोगों के सहज भावात्मक व अनुभवात्मक उद्‌गारों को सुनकर मुझे व श्रीसंघ

को अत्यंत प्रसन्नता हो रही है। इस दृष्टि से यह आध्यात्मिक उपलब्धि का सर्वश्रेष्ठ चातुर्मास है। आप अरिहंत-सिद्ध बनो ऐसी मेरी शुभाकांक्षा सह-शुभाशीर्वाद है। इस चातुर्मास में सिद्ध चक्र विधान आदि अनुष्ठान संपन्न हुए।

शुभाकांक्षी-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

निस्पृह संत की साधना V/S मोही संत की प्रभावना

(अनंत तीर्थंकर आदि साधु अवस्था में भौतिक निर्माण क्यों नहीं करते!?)

(चाल : आत्मशक्ति.....)

अभी तक हो गये अनंत तीर्थंकर-गणधर-आचार्य-पाठक साधु।
गौतम बुद्ध व वैदिक ऋषि ईसा व रामकृष्ण से कृष्णमूर्ति।।
गृहस्थ अवस्था में इनमें अधिकतर थे राजा से लेकर साहुकार तक।
गृहस्थ अवस्था के समस्त वैभव त्यागकर बन गये वे निस्पृह संत।। (1)

गृहस्थ अवस्था में भले वे निर्माण किये हो मंदिर व धर्मशालादि।
किन्तु साधु बनने के अनंतर नहीं बनाये क्यों मंदिर धर्मशालादि?।।
वे तो थे अधिक दयालु परोपकारी साधु बनने से और अधिक।
तथापि क्यों नहीं किया भौतिक निर्माण इसका समाधान है निम्नोक्त।। (2)

गृहस्थ में नहीं थे पूर्ण त्यागी किन्तु पूर्ण त्याग से बने संन्यासी।
त्यागे हुए को नहीं ग्रहण करते जो यथार्थ से होते निस्पृह संन्यासी।।
भौतिक त्याग सह होता राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोधादि विभाव त्याग।
ख्याति-पूजा-लाभ व याचना-संग्रह, दबाव-प्रलोभन व संक्लेश-द्वंद।। (3)

आरंभ-परिग्रह व आदेश निर्देश आकर्षण-विकर्षणमय भौतिक काम।
भौतिक विनिमय रूप समस्त काम नौकर से यान-वाहन काम।।
इन सबसे होती द्रव्य-भाव हिंसा तथाहि विविध प्रदूषण।
जिससे न होती आत्मविशुद्धि समता-शांति से ध्यान-अध्ययन।। (4)

इन सब कारणों से वे न रहेंगे सही साधु हो जायेंगे वे गृहस्थ सम।
इससे उनका होगा आत्मपतन वे न रहेंगे गृहस्थ व साधु-श्रमण।।
ऐसी अवस्था में वे हो जायेंगे उभय भ्रष्ट त्रिशंकु समान होगी अवस्था।
माया मिली न राम अनुसार इह पर लोक में भारी दुर्दशा।। (5)

ऐसे जो होते निस्पृह साधक उनके अनुयायी ही बनते अधिक।
वे स्वेच्छा से प्रेरित होकर करते दान-दया-सेवा-परोपकार-त्याग।।
इससे विपरीत जो काम करते उनसे न होता स्व-पर-उपकार।
वे स्वयं संक्लेशित होते उनको मिलता अपमान से कारागार।। (6)
किन्तु जो होते रागी-द्वेषी-मोही (स्वार्थी) वे ये सभी करते रहते।
'लोभी गुरु लालची चेला' हुए नरक में ठेलमठेला रूप से दुःख सहते।।
श्रद्धा-प्रज्ञा व निःस्वार्थी जन ऐसे साधु से दूर रहते।
अंधश्रद्धालु व स्वार्थी जन ऐसे साधु से स्व-स्वार्थ साधते।। (7)
ऐसे साधु व अनुयायी से परम पावन धर्म होता है कलंकित।
इसलिए तो 'सूरी कनकनंदी', ऐसे कार्यों से रहते विरक्त।। (8)

मेरी स्व-प्रभावना व बाह्य प्रभावना

(स्व-प्रभावना से बाह्य प्रभावना स्वतः होती है)

-आचार्य कनकनंदी

(चाल : मन रे! तू काहे.....)

जिया रे! तू स्व-प्रभावना करऽऽऽ
स्व-प्रभावना से बाह्य प्रभावनाऽऽऽ स्व-पर प्रकाशी तू बनऽऽऽ...(ध्रुव)
जो दीपक स्वयं होता प्रकाशितऽऽऽ अन्य भी होते स्वयं प्रकाशितऽऽऽ
जो दीपक न होता स्वयं प्रकाशितऽऽऽ अन्य को न करता प्रकाशितऽऽऽ
आत्मदीप पहले बन रेऽऽऽ...(जिया)...(1)
आत्मा प्रभावना हेतु करो साधनाऽऽऽ आत्मविश्वास-ज्ञान-चारित्र द्वाराऽऽऽ
निस्पृह-निराडम्बर-समता द्वाराऽऽऽ ध्यान-अध्ययन-तप-त्याग द्वाराऽऽऽ
सरल-सहज-शांति के द्वाराऽऽऽ...(जिया)...(2)
इससे करो तू आत्म विशुद्धिऽऽऽ आत्मा की करो अनुभूतिऽऽऽ
स्वयं को शुद्ध-बुद्ध-आनंद करोऽऽऽ संक्लेश-द्वंद्व से विमुक्तिऽऽऽ
निर्बाध-निर्विकार तू बनऽऽऽ...(जिया)...(3)
इससे होगी तेरी आत्मिक शक्ति वृद्धिऽऽऽ जिससे होगी आत्मप्रभावनाऽऽऽ
इस हेतु धन-जन आडम्बर न चाहिएऽऽऽ पर अपेक्षा-उपेक्षा न प्रतीक्षाऽऽऽ
अतः स्व-प्रभावना सरल-सहजऽऽऽ...(जिया)...(4)

स्व-प्रभावना बिन बाह्य प्रभावना हेतुऽऽऽ चाहिए धन-जन व साधनऽऽऽ
इस हेतु होते दबाव-प्रलोभनऽऽऽ चंदा व बोली या याचनाऽऽऽ
इससे होते संक्लेश-विराधनाऽऽऽ...(जिया)...(5)
जिससे अप्रभावना अधिक होतीऽऽऽ स्व-पर को न मिले समता-शांतिऽऽऽ
इह पर लोक में (भी) न आत्म उन्नतिऽऽऽ न मिलती परम मुक्तिऽऽऽ
'कनक' का लक्ष्य परम मुक्तिऽऽऽ...(जिया)...(6)

गुणीगुरु से सुयोग्य शिष्य होते स्वयंमेव प्रेरित

(चाल : भातुकली....., आत्मशक्ति.....)

श्रद्धा-प्रज्ञा युक्त विनय व्यवहार करते (हैं) मानव अन्य से।
जब वे अनुभव करते है स्वयं न श्रेष्ठ उनसे।।
छोटी रेखा स्वयंमेव छोटी दिखाई देती है बड़ी रेखा से।
सूर्य-प्रकाश से चंद्र-प्रकाश स्वयंमेव विलीन हो जाता।। (1)
तथाहि तीव्र-मंद शब्द सम महान्-क्षुद्र में होता है।
''नमो गुरुभ्य गुणगुरुभ्य'' से महान् गुणी पूज्य होता है।।
फल से भारी शाखायें यथाहि स्वयंमेव नम्र होती हैं।
गुणों से भरीत महान् व्यक्ति स्वयंमेव नम्र होते हैं।। (2)
जब मानव स्व-पर का मूल्यांकन निष्पक्ष से सही करते हैं।
स्वयं को यदि जिससे कम पाते उनका विनय करते हैं।।
यथा गौतम गणधरस्वामी, अंगुलमाल, वरत्नाकर।
स्वयं के दोष व गुरु के गुण जाने (माने) गुरु से बने विनम्र।। (3)
ऐसे विनय ही सही विनय है अन्यथा लौकिकाचार है।
ऐसे विनय से ही शिष्य/(भक्त) गुरु की सेवा भक्ति करते हैं।।
ऐसे विनय से होता भाव पावन समर्पण भाव होता है।
जिससे गुरु की सेवा भक्ति से सातिशय पुण्य पाते है।। (4)
जिससे होता है सर्वोदय आत्मविश्वास भी बढ़ता है।
महान् लक्ष्य के संपादन हेतु उत्तम विचार भी बढ़ता है।।
गुरु के आशीर्वाद मार्गदर्शन में शिष्य भी आगे बढ़ते हैं।
स्व-पर-विश्वकल्याण करके इह-परलोक सुखी होते हैं।। (5)
प्रज्वलित-दीपक से यथा बुझे हुए दीपक जलते हैं।

तथाहि महान्-गुरु से योग्य-शिष्य भी महान् बनते हैं।।

गुरु होते है तरणतारण ब्रह्मा-विष्णु व महेश्वर।
ऐसे गुरुत्व को पाने हेतु 'कनक' सदा तत्पर।। (6)

अज्ञानी मोही से परे मेरा आत्मविकास

(सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि-डिग्री-वर्चस्व परे मेरा आत्मविकास)

-आचार्य कनकनंदी

(चाल : मन रे! तू काहे.....)

'कनक' तू! आत्मविश्वास करऽऽऽ
अज्ञानी-मोही-कामी-स्वार्थी से...तू अप्रभावी हो चलऽऽऽ...(ध्रुव)
ऐसे जन न होते तेरे आदर्श...भले वे हो किसी भी धर्म केऽऽऽ
साक्षर-निरक्षर, ग्रामीण हो शहरी...किसी भी जाति-राष्ट्र-भाषा केऽऽऽ
किसी भी आयु (या) परिस्थिति केऽऽऽ...कनक...(1)
आबाल-वृद्ध-वनिता व प्रौढ़...विद्यार्थी से वैज्ञानिक तक (के)ऽऽऽ
सत्ता-संपत्ति व प्रसिद्धि (डिग्री) वाले...प्रजा से ले नेता साधु आचार्य (के)ऽऽऽ
तेरा आदर्श तो इनसे परेऽऽऽ...कनक...(2)
यथा अस्थि से निर्मित हर वस्तु...होता है सदा अस्थिमय हीऽऽऽ
भले उसका आकार व प्रकार...हो पशु-पक्षी दया-नारकीऽऽऽ
तथाहि अज्ञानी मोही कामी स्वार्थीऽऽऽ...कनक...(3)
ऐसे जीव न स्व-दोषों को जानते...न मानते न करते संशोधनऽऽऽ
अन्य को हीन-दीन-दोषी मानकर...करते उनकी निंदा से ले संशोधनऽऽऽ
भले हो वे सरल/(भद्र) से ले महान्ऽऽऽ...कनक...(4)
ऐसे अज्ञानी मोही कामी स्वार्थी...चाहते सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धिऽऽऽ
भोगोपभोग व वर्चस्व दंभ...ढोंग-पाखण्ड-आडम्बर प्रभृतिऽऽऽ
'गोमुख-व्याघ्र' समान प्रवृत्तिऽऽऽ...कनक...(5)
इनसे परे तेरा आदर्श (होते) तीर्थंकर...उनका करो सदा अनुकरणऽऽऽ
उनके समज्ञान-वैराग्य-समता से...आत्मा को करो पावन महान्ऽऽऽ
'कनक' यह ही तेरा लक्ष्य महान्ऽऽऽ...कनक...(6)